Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[illegible]
एवं
शुचिव्रत लखनपाल

वेदों में इन्द्र

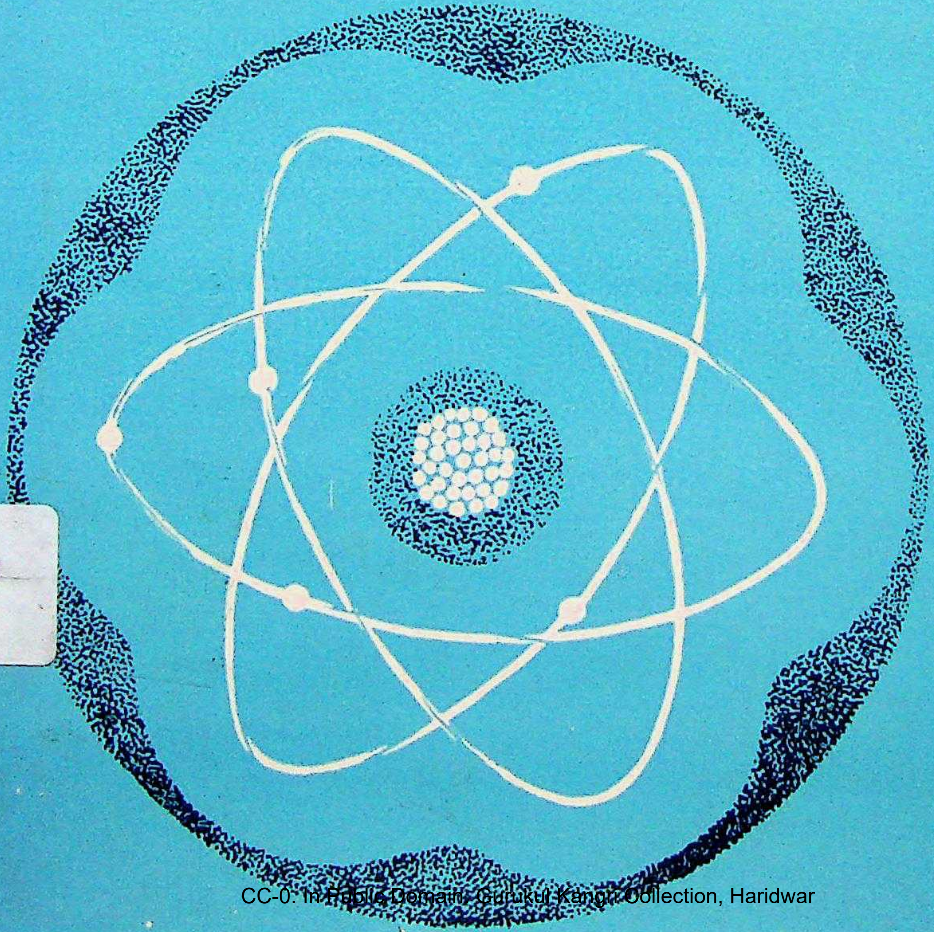

43
V
88

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

167988

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पं० शुचिव्रत लखनपाल

पंजाब के विख्यात विद्वान् तथा डी०ए०वी० कालेज, लाहौर (अब पाकिस्तान में) के प्राध्यापक श्री पं० राजाराम शास्त्री के ज्येष्ठ सुपुत्र पं० शुचिव्रत लखनपाल, शास्त्री, एम० ए०, एम० ओ० एल० स्वयं भी डी० ए० वी० कालेज (लाहौर) में प्राध्यापक रह चुके हैं।

आप स्वयं भी उच्च कोटि के विद्वान् हैं। इस पुस्तक के लेखन में मुझे उनका सक्रिय सहयोग मिला है।

वास्तव में वेदाध्ययन में वह मेरे गुरु समान हैं। लगभग पन्द्रह वर्ष तक वेदादि शास्त्रों का अध्ययन हमने साथ-साथ किया है। उनके सहयोग से ही 'वेदों में सोम' तथा 'वेदों में इन्द्र' प्रस्तुत रूप में मैं लिख पाया हूँ।

पण्डित जी का निःस्वार्थ सहयोग मुझे सतत मिलता रहा है और इस सबके लिए मैं उनका अत्यन्त आभारी हूँ।

—गुरुदत्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वेदों में इन्द्र

Central Library
167988
Gurukula Kangri (Deemed to be University) Haridwar

गुरुदत्त
एवं
शुचिव्रत लखनपाल

081
167988

आर्ष साहित्य
Complete Vedic Books Store
Yog, Vedic, Ayurvedic, Relegious
All Yog & Organic Products
(M) 9541317278, 8869821468
Web: aarshsahitya.com

शाश्वत संस्कृति परिषद्, नई दिल्ली-१ - Bak

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

R
089.9143
GUR-U

मूल्य : ४० रुपये

प्रकाशक : हिन्दी साहित्य सदन
३०-पी, कनॉट सरकस, नई दिल्ली-११०००१

संस्करण : १९९६

मुद्रक : बालाजी ऑफसेट
शाहदरा, दिल्ली-११००३२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भूमिका

इस श्रृंखला में हम एक पुस्तक पहले लिख चुके हैं। उस पुस्तक का नाम है 'वेदों में सोम'। सोम भी कुछ एक वेद मन्त्रों का ऐसे ही देवता है, जैसे कि इन्द्र मित्र, वरुण, प्रजापति आदि है।

यह वस्तु-स्थिति है कि वेदमन्त्रों में वर्णित विषय ही वेदमन्त्रों का देवता होता है। इसकी पुष्टि शौनक ऋषि और यास्काचार्य भी करते हैं।

'वेदों में सोम' नाम की अपनी पुस्तक में हमने सोम से सम्बन्धित वेदों के मन्त्र देकर सोम का अर्थ समझाने का यत्न किया है। ऋग्वेद के भिन्न-भिन्न मण्डलों और सूक्तों के ऐसे मन्त्र लेकर, जिनका देवता सोम कहा गया है, सोम शब्द का अर्थ प्रतीत करने का यत्न किया गया है। मध्यकालीन भाष्यकारों ने जहाँ-जहाँ भी 'सोम' को 'क्षुप्र' अथवा 'लता' के पत्तों का स्वरस मानकर तदनुरूप वेदमन्त्र की व्याख्या की है, वहाँ हमारा उनसे मतभेद रहा है और हमारा निष्कर्ष उनसे सर्वथा भिन्न है।

उस पुस्तक में हमने यह सिद्ध किया है कि 'आपः तीन हैं, जिनमें से एक 'सोम' भी है। अतः जहाँ-जहाँ भी मन्त्रों में 'सोम' का उल्लेख आया है, वहाँ उसका अभिप्राय 'सोम आपः' से ही है।

इसी प्रकार हम उसी श्रृंखला में अपनी यह दूसरी पुस्तक 'वेदों में इन्द्र' नाम से लिख रहे हैं। मध्यकालीन भाष्यकार तो इन्द्र के विषय में एकमत नहीं हैं। कोई 'इन्द्र' को नरेश मानते हैं और इसे देवताओं का राजा मानकर उस प्रकार के अर्थ करते हैं। कुछ भाष्यकार ऐसे भी हैं जो इन्द्र के विषय में कुछ न समझते हुए, केवल व्याकरण के बल पर मन्त्रार्थ करने का यत्न करते रहे हैं।

यास्क तथा अन्यान्य विद्वानों के साक्ष्य से यह सिद्ध है कि वेदमन्त्रों में देवता, द्रष्टा ऋषियों के निश्चय किये हुए हैं।[1] ये देवता मन्त्रों में वर्णित विषय को बताते हैं।

सर्वप्रथम देवता का, जो कि मन्त्रार्थ बताने में सहायक होगा, अपना अर्थ

---

१. व्याख्या के लिए देखें 'वेद प्रवेशिका' ले० गुरुदत्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जानना चाहिए। अतः, हम यहाँ इस पुस्तक में भी पहले इन्द्र शब्द का अर्थ, देवता के रूप में, विदित करने का यत्न करेंगे।

जब इन्द्र देवता का अर्थ सुनिश्चित हो जायेगा तब हम ऋग्वेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद में से इन्द्र देवता के मन्त्रों के उन्हीं अर्थों को सिद्ध करने का यत्न करेंगे।

हम समझते हैं कि हमें इस पुस्तक में भी वैसी ही सफलता प्राप्त हुई है जैसी कि 'वेदों में सोम' का अर्थ पता करने में हुई थी।

हमारा विश्वास है कि वेदों में संसार का उत्कृष्ट ज्ञान भरा हुआ है। इसके साथ ही वेदमन्त्रों के देवताओं के द्वारा वेदाध्ययन करने से वेदार्थ सुगमता से समझ में आने लगते हैं।

वेदों में देवताओं के अर्थ पता करने के प्रयास में हमारी यह दूसरी पुस्तक है किन्तु हमारा प्रयास अभी जारी है और भविष्य में अन्य देवताओं के भी अर्थ प्रतीत कर उनको पुस्तकरूप दिया जायेगा।

वेदमन्त्रों का प्रसंगोचित अर्थ किया जाय और देवता का अभिप्राय जानने से उसमें बहुत अधिक सहायता मिलती है, अपनी इस धारणा के आधार पर लोक-कल्याण की भावना से ही हम यह प्रयत्न करने के लिए प्रेरित हुए हैं।

—गुरुदत्त—शुचिव्रत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राक्कथन

: १ :

पूर्व इसके कि हम अपनी पुस्तक के मुख्य विषय पर विचार आरम्भ करें, हम इस पुस्तक में भी यास्क आदि नैरुक्ताचार्यों द्वारा प्रतिपादित वेदार्थ करने सम्बन्धी सिद्धान्तों का संक्षिप्त वर्णन कर देना चाहते हैं। यद्यपि हमने अपनी पुस्तक 'वेद प्रवेशिका : भाग-२' में व्याख्या-सहित उसका वर्णन किया है।

प्रथम सिद्धान्त

......तत्र नामान्याख्यातजानीति शाकटायनो नैरुक्तसमयश्च ॥

(यास्क १-१२)

अर्थात्—इस सम्बन्ध में शाकटायन तथा नैरुक्तों का मत है कि सब नाम क्रियाओं (धातुओं) से व्युत्पन्न हैं।

वृहद्देवता में इसे इस प्रकार कहा गया है—

तत्खल्वाहुः कतिभ्यस्तु कर्मभ्यो नाम जायते।

सत्त्वानां वैदिकानां वा यद्वान्यदिह किंचन (वृ० दे० १-२३)

अर्थ है—इससे यह कहा जाता है कि कर्म (धातु) से ही नाम का ज्ञान होता है। वेद का सत्त्व (नाम) अथवा जो कुछ भी सम्बन्धित बात है, वह इन नामों (देवताओं के) नामों से ही जानी जाती है।

द्वितीय सिद्धान्त

अयं मन्त्रार्थचिन्ताभ्यूहोऽभ्यूढः।
अपि श्रुतितोऽपि तर्कतः।
न तु पृथक्त्वेन मन्त्रा निर्वक्तव्याः।
प्रकरणश एव तु निर्वक्तव्याः ॥ (यास्क १३-१२)

अर्थात्—मन्त्रार्थ चिन्तन करने का विषय है। उहापोह (युक्ति प्रति-युक्ति) करने से प्राप्त किया जाता है। इसे श्रुति के विपरीत नहीं होना चाहिए।

श्रुति के विपरीत से अभिप्राय है कि किसी भी मन्त्र का अर्थ अथवा अभिप्राय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐसा नहीं होना चाहिए जो कि वेद में ही किसी अन्य स्थान पर आये मन्त्र के भाव के विपरीत हो, अथवा उसका खण्डन करे।

तृतीय सिद्धान्त

उक्त उद्धरणों में यह भी कहा है 'अपि तर्कतः'। इसका यही अभिप्राय है कि वेदमन्त्र का जो भी अर्थ किया जाय वह तर्कसंगत होना ही चाहिए।

चतुर्थ सिद्धान्त

यास्क-रचित निरुक्त का जो उद्धरण हमने ऊपर दिया है उसका अगला वाक्य है—**न तु पृथक्त्वेन मन्त्रा निर्वक्तव्याः।**

इसका अभिप्राय है कि प्रसंग छोड़कर किसी भी मन्त्र का अर्थ नहीं किया जाना चाहिए। कतिपय विद्वानों को यह भ्रम हो गया है कि, क्योंकि मन्त्र ही नहीं अपितु उनके पद भी विभिन्न ऋषियों की अनुमति के आधार पर हैं, इस कारण उनके अर्थ भी पृथक्-पृथक् होते हैं। मन्त्रों का परस्पर कोई सम्बन्ध नहीं है। यहाँ इसी बात का खण्डन किया गया है।

पंचम सिद्धान्त

यां यां देवतां निराह तस्यास्तस्यास्ताद्भाव्यमनुभवति अनुभवति।

(निरुक्त १३-१३)

अर्थ—जिस-जिस देवता का मन्त्र में संकेत हो उस-उसके अनुसार ही मन्त्र के अर्थ होने चाहिएँ।

शौनक ने इसी विषय में 'वृहद्देवता' में कहा है—

वेदितव्यं दैवतं हि मन्त्रे मन्त्रे प्रयत्नतः।
दैवतज्ञो हि मन्त्राणां तदर्थमवगच्छति॥
तद्वितांस्तदभिप्रायान् ऋषीणां मन्त्रदृष्टिषु।
विज्ञापयति विज्ञानं कर्माणि विविधानि च।
न हि कश्चिद् विज्ञाय याथातथ्येन दैवतम्।
लौक्यानां वैदिकानां वा कर्मणां फलमश्नुते॥

(वृ० दे० १-२, ३, ४)

अर्थ—मन्त्र-मन्त्र में प्रयत्न से उसके देवता को जानना चाहिए। जो कोई मन्त्र के देवता को जानता है वह ही उसके अर्थ को समझ सकता है।

वह व्यक्ति ही ठीक-ठीक सम्मति दे सकता है, कि मन्त्र को कहने का उद्देश्य क्या है। वह उद्देश्य उस मन्त्र में तब निहित था जब वह ऋषि पर प्रकट हुआ था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिसको मन्त्र के देवता का ज्ञान नहीं, वह न तो मन्त्र के अर्थ को समझता है और न ही उसमें वर्णित कर्म को करने में सफल हो सकता है।

षष्ठ सिद्धान्त

यास्क ने व्याकरण और वेदार्थ के विषय में कहा है—

अथ निर्वचनम्। तद् येषु पदेषु स्वरसंस्कारौ समर्थौ प्रादेशिकेन विकारेणान्वितौ स्यातां तथा तानि निर्ब्रूयात्। अथानन्वितेऽर्थेऽप्रादेशिके विकारेऽर्थनित्यः परीक्षेत। केनचिद् वृत्तिसामान्येन। अविद्यमाने सामान्येऽप्यक्षरवर्णसामान्यान्निर्ब्रूयात्। न त्वेव न निर्ब्रूयात्। न संस्कारमाद्रियेत। विशयवत्यो हि वृत्तयो भवन्ति। यथार्थं विभक्तीः सन्नमयेत्॥या० २-१॥

अर्थ—अब निर्वचन का विषय आरम्भ किया जा रहा है। जिन पदों में स्वर और प्रकृति प्रत्यय के संस्कार वास्तविक पदार्थ के बताने में समर्थ हों, वहाँ उसके अर्थ व्याकरण के अनुसार ही करने चाहिएँ। यही उनका निर्वचन होगा। परन्तु यदि उस प्रकार अर्थ असंगत होने लगें तो प्रसंग को ध्यान में रखकर और धातु के सम्बन्ध का ध्यान कर तथा पूर्वापर विचार करके निर्वचन किया जाय। धातु से पूर्ण समन्वय न होने पर अक्षर-मात्र तथा वर्ण-मात्र की समानता से ही निवर्चन करे।

दुर्गाचार्य का भी कथन है कि वेद में निर्वचन ही करें चाहे वे व्याकरण के अनुकूल हों अथवा वे उसका उल्लंघन करते हों।

: २ :

उपरिलिखित अनुच्छेद में वर्णित वेदार्थ करने के सिद्धान्तों में एक सिद्धान्त है—मन्त्र के देवता के अनुसार अर्थ करना। किन्तु इसमें यह कठिनाई अनुभव होने लगी है कि सुदीर्घ काल व्यतीत होने पर 'देवता' पद के अर्थ में भी, वेद के अन्य शब्दों की भाँति अन्तर पड़ गया है। उदाहरण के रूप में, एक शब्द है 'आपः'। वैदिक भाषा में आपः प्रकृति के परमाणुओं के निबन्धन-विशेष का नाम है। परन्तु वर्तमान संस्कृत भाषा में आपः का अर्थ जल किया जाता है। वेदार्थ करते हुए आपः का अर्थ यदि जल किया जाय तो वह अशुद्ध होगा। इसी प्रकार एक अन्य शब्द है 'पर्जन्य'। साधारण संस्कृत भाषा में पर्जन्य का अर्थ है बादल। परन्तु वैदिक भाषा में इसका यौगिक अर्थ है। वहाँ इसका अर्थ है—उत्पन्न हुओं की पालना करने वाला। इसी प्रकार जब शब्द देवता (मन्त्र के विषय) के रूप में प्रयुक्त होता है तब भी तो भाषा के अर्थ कालक्रमेण बदलने के कारण अर्थ में अन्तर आता है। इस अवस्था में भी शब्द का अर्थ यौगिक ही करना चाहिए। वैदिक भाषा के रूढ़ि अर्थ अनुपयुक्त हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वेद के शब्दों के अर्थ चाहे वे सामान्य शब्द के रूप में आये हों और चाहे देवता के रूप में, किन्तु उनके अर्थ वही होने चाहिएँ, जो कि ऊपर वर्णित नियमों के अनुसार बन सकते हों।

उदाहरण के रूप में 'आप:' अनेक मन्त्रों के देवता के स्थान पर प्रयुक्त होता है। ऐसी स्थिति में वहाँ पर आप: का निर्वचन करना चाहिये, न कि उसके रूढ़ अर्थ ले लिये जायें।

इसी प्रकार 'मरुत्' शब्द अनेक स्थानों पर देवता के रूप में प्रयुक्त हुआ है। मरुत् के सामान्यतया 'प्राणी जो मरता है' इस प्रकार का अर्थ किया जाता है। परन्तु देवता के रूप में इसका एक विशेष अर्थ है। मरुत् एक प्रकार के अणु (परमाणुओं के संयोग) होते हैं, जिनके विशेष गुण होते हैं।

मरुत् शब्द का मरणशील अर्थ तो वैदिक भाषा का ही है। परन्तु जब यह शब्द मन्त्रों पर विषय के रूप में प्रयुक्त होता है तब वहाँ पर इसका विशेष अर्थ हो जाता है। जो सब वेदों में समान है।

हमारे कहने का अभिप्राय है कि देवता रूप में प्रयोग किये शब्द का अर्थ जहाँ धातु से व्युत्पन्न होगा वहाँ वह अर्थ तो मन्त्रार्थ में निर्वचन कर निश्चय किया जायेगा। परन्तु यदि वह शब्द मन्त्र पर देवता के रूप में कहा होगा तो इसके अर्थ स्थिर होंगे।

उदाहरण के लिए 'इन्द्र' देवता से सम्बन्धित अनेक मन्त्र हैं। इसका अर्थ है कि इन्द्र के विषय में वेद में बहुत अधिक मन्त्र हैं। तदपि इन्द्र शब्द के रूप में पारिभाषिक शब्द होने से सदा एक ही अर्थ वाला होगा। यह हमारा सुनिश्चित मत है कि चारों वेदों में इन्द्र जब देवता के रूप में कहीं कहा गया है तो वह देवता के अर्थों में ही कहा गया है और देवता के अर्थ निश्चित हैं।

शब्द चाहे तो देवता के रूप में हो और चाहे सामान्य शब्द के रूप में, अर्थ तो यौगिक ही होंगे। परन्तु सामान्य शब्द के रूप में अर्थ मन्त्र के विषय के अनुसार किये जायेंगे। परन्तु जब कोई शब्द मन्त्र के विषय के रूप में कहा गया तो उसके अर्थ तो निरुक्त के सिद्धान्तों से पता करने होंगे, परन्तु वह अर्थ सदा एक ही होंगे।

यहाँ हम उदाहरण देकर इन्द्र शब्द के देवता के रूप में अर्थ के विषय में अपने मत को स्पष्ट कर देना उपयुक्त समझते हैं।

शौनक ने देवता से मन्त्र का और मन्त्र से देवता का सम्बन्ध बताते हुए कहा है—

> स्तोतृभिर्देवता नाम्ना उपेक्षेतेह मन्त्रवित्।
> तत्खल्वाहुः कतिभ्यस्तु कर्मभ्यो नाम जायते॥
> सत्त्वानां वैदिकानां वा यद्वान्यदिह किंचन॥
>
> (बृ० दे० १-२२, २३)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थ—मन्त्रों के जानने वाले स्तुतियों (मन्त्रों में कहे वाक्यों) के द्वारा (देवताओं के) नाम से अर्थ कहते हैं।

इस कारण कहा जाता है कि अर्थ से ही नाम (पदार्थ) का ज्ञान होता है। वेद का अथवा जो कुछ भी सम्बन्धित बात है वह (देवताओं) के नामों से पता चलता है।

इसके साथ ही यह भी कहा है कि मन्त्रों के देवता मन्त्रद्रष्टा ऋषियों ने निश्चय किये थे। इस तथ्य को हम पूर्व पृष्ठों में वृहद्देवता १-२, ३, ४, के उदाहरण से स्पष्ट कर आए हैं।

इससे यह तो स्पष्ट है कि मन्त्र के देवता के रूप में अर्थ निश्चित हो गया। वह उस रूप में शब्द का पारिभाषिक अर्थ हो गया है।

इस दिशा में महर्षि स्वामी दयानन्द जी ने बहुत स्थानों पर नियम भंग किया है। अन्य भाष्यकारों ने भी कहीं-कहीं अपनी बुद्धि का प्रयोग किया है। किन्तु इस विषय में हमारा यह निश्चित मत है कि वेदमन्त्रों में देवता के रूप में आये शब्द का अर्थ पारिभाषिक होने के कारण स्थिर है। चारों वेदों में अथवा वैदिक साहित्य में अर्थ वही होगा जो निर्धारित है।

यदि ऐसा न किया गया तो मन्त्रों के अर्थ स्थिर नहीं हो पायेंगे। तब वे भाष्यकारों की कल्पना के खिलौने बन जायेंगे।

शब्दों के अर्थ तो यौगिक हैं। परन्तु शब्द देवता के रूप में प्रयुक्त होने पर पारिभाषिक स्थिर अर्थों वाला हो जाता है।

मन्त्र का देवता मन्त्र-द्रष्टा ऋषि द्वारा निश्चित किया गया है। इस कारण चारों वेदों में वे एक ही अर्थ में आये हैं।

अतः जब हम इन्द्र देवता के विषय में लिख रहे हैं तो जब और जहाँ भी इन्द्र शब्द देवता के रूप में आया है एक ही अर्थ में आया है। चारों वेदों में उसका एक ही अर्थ होगा।

इसी निश्चय के अनुसार हमने इस पुस्तक में ऋक्, यजुः, अथर्व इन तीनों वेदों में से इन्द्र देवता के नाम से आये भिन्न-भिन्न मन्त्रों के अर्थ यहाँ दिये हैं। हमने उनमें इन्द्र देवता के रूप में आये शब्द का एक ही अर्थ किया है।

यह ठीक है कि पहले हमने इन्द्र के अर्थ को जानने का यत्न किया है। जब इन्द्र देवता के रूप में उस शब्द का अर्थ विदित हो गया तो हमने उसका प्रयोग चारों वेदों में उसी अर्थ में लिया है।

वैसे भी इन्द्र शब्द सामान्य शब्द के रूप में भी मन्त्र के अनुसार ही अर्थ व्यक्त करता है।

उदाहरण के रूप में एक शब्द आया है 'इन्द्रियं'। इसमें इन्द्र शब्द का अर्थ देवतावाचक नहीं है। यहाँ इसका अभिप्राय बल से है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

: ३ :

इन्द्र किस वस्तु का नाम है, हम समझते हैं कि पहले इसका ही निश्चय हो जाय तो उपयुक्त होगा। जैसाकि शौनक ऋषि ने कहा है तदनुसार हम इसका अर्थ वेदमन्त्र से पता करने का यत्न करेंगे।

इस सम्बन्ध में पहले इन्द्र की उत्पत्ति से सम्बन्धित मन्त्र की खोज करनी होगी। ऋग्वेद में इन्द्र की उत्पत्ति का स्पष्ट वर्णन है। वहाँ इसके प्रकट होने का वर्णन करते हुए लिखा है—

यमेन दत्तं त्रित एनमायुनगिन्द्र । एणं प्रथमो अध्यतिष्ठत् ।।

(ऋ०वे० १-१६३-२)

अर्थ—नियन्त्रण करने वाले (परमात्मा) द्वारा दी हुई लगाम त्रित ने जोप ली अर्थात् स्वीकार कर ली। इस त्रित पर पहले इन्द्र, अधिष्ठित था—अधिकार रखता था—नियन्त्रण में आये परमाणु (त्रित) ने उसकी लगाम स्वीकार कर ली।

बलवान् से अश्व (प्राण) को परमाणुओं पर ठहरा दिया गया।

परमात्मा की प्राणशक्ति शोर मचाती हुई अन्तरिक्ष में ऊपर को उठती हुई जब फैली तो वह परमाणुओं पर लगाम बन गई।

इस मन्त्र में कहा है कि त्रित पर पहले इन्द्र अधिष्ठित था। इसका अभिप्राय है कि इन्द्र परमाणु (त्रित) में पहले से उपस्थित था।

इसी भाव का वर्णन शतपथ ब्राह्मण ने अधिक स्पष्ट रूप में किया है। वहाँ कहा है—

असद्वा इदमग्र आसीत् तदाहु : किं तदसदासीदित्यृषयो वाव तेऽग्रेसदासी-त्तदाहु : के तऽऋषय इति प्राणा वाऽऋणयस्ते यत्पुरास्मात् सर्वस्मादिदमिच्छन्तः श्रमेण तपसारिषंस्तस्मादृषयः ।।

स योऽयं मध्ये प्राणः। एष ऽइवेन्द्रस्तानेषु प्राणान्मध्यत ऽइन्द्रियेणैन्द्ध यदैन्द्ध तस्मादिन्ध इन्धो ह वै तमिन्द्र इत्याचक्षते परोक्षं परोक्ष कामाहि देवास्त इद्धाः सप्त नाना पुरुषानसृजन्त ।। (श० ब्र० ६-१-१-१, २)

अर्थ—पहले यह असत् (अव्यक्त प्रकृति) ही थी। असत् क्या था? ये ऋषि थे। ऋषि ही प्राण थे। ये (परमाणु) से (अशान्त) हो गये। इसी से इनका नाम ऋषि हुआ।

यह मध्य में ही वह इन्द्र है। इन्द्र इन्ध से व्युत्पन्न है। दीप्त करने वाला इन्द्र इन्ध से ही बना। यह मध्य में प्राण इन्द्र है।

(मध्य में से अभिप्राय है परमाणु के मध्य में।)

अतः वेद और शतपथ ब्राह्मण के कथन से इन्द्र परमाणु के भीतर की शक्ति ही है। यह शक्ति त्रिगुणात्मक है और प्रलय काल में यह परमाणु के भीतर ही संतु-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लित रहती है ।

इसके विषय में सांख्य दर्शन में कहा है—

सत्त्वरजस् तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः । (सां० द० १-३१)

अर्थ है—प्रकृति का प्रत्येक परमाणु तीन प्रकार की शक्तियों, सत्त्व, रजस् और तमस् की सन्तुलित अवस्था होती है ।

चित्रकार इसे इस प्रकार चित्रित करता है—

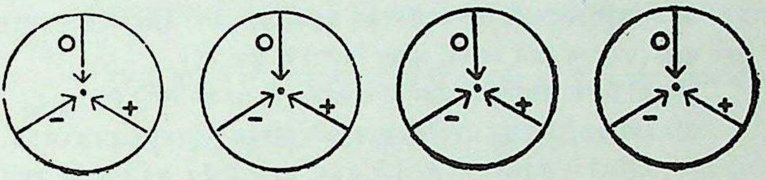

चित्र सं० १

चित्र में दिया गया प्रत्येक गोला परमाणु का प्रतीक है । इसमें अंकित तीर शक्ति और उसकी कार्य दिशा का संकेत करता है । सत्त्व का अर्थ (+) धन शक्ति से है । ऋण (—) से अभिप्राय है रजस् शक्ति और शून्य (०) से अभिप्राय है आवेश-रहित ।

तीनों का सन्तुलन परमाणु के भीतर की साम्यावस्था में है ।

यह परमाणु के भीतर त्रिगुणात्मक शक्ति इन्द्र है । यही शतपथ ब्राह्मण में 'सः इयं मध्ये प्राणः' वह (इन्द्र) मध्य में शक्ति है, कहा है ।

अतः वेद में इन्द्र का अभिप्राय न राजा है न ही कोई शूरवीर योद्धा पुरुष है । यह त्रिगुणात्मक शक्ति है जो परमाणु के भीतर रहती है ।

शतपथ ब्राह्मण में कहा है कि जब परमाणु ऋषयः अशान्त हो जाते हैं तो यह शक्ति बाहर को आ जाती है । वेद में भी इसी भाव को प्रकट किया गया है ।

ऋ० १-१६३-२ में कहा है कि—अश्वाग्नि (रचना करने वाली शक्ति) परमाणु पर लगाम की भाँति आरूढ़ हो जाती है । तब इन्द्र परमाणु के बाहर प्रकट हो जाता है ।

इस लगाम लगने पर परमाणु का चित्र कुछ इस प्रकार का हो जाता है—

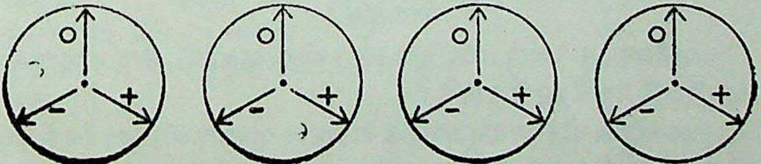

चित्र सं० २

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस चित्र की विवेचना वही है जो कि चित्र सं० १ की है। अन्तर यह हुआ कि त्रिगुणात्मक शक्ति परमाणु के भीतर ही सन्तुलित रहने से परमाणु साम्यावस्था (ऋषि) कहा जाता था और अब परमाणु सजग हो जाता है।

इसके विषय में वेद में कहा है—

युञ्जन्ति ब्रध्नमरुषं चरन्तं परितस्थुषः। रोचन्ते रोचना दिवि।।

(ऋ० १-६-१)

अर्थ—(परितस्थुषः चरन्तं ब्रध्नं अरुषं युञ्जन्ति) चारों ओर व्यापक स्थिर रहने वाले (परमाणु) जब व्यापक शक्ति (प्राण) से जुड़ते हैं।

(रोचना दिवि रोचन्ते) प्रकाशमान अन्तरिक्ष में चमकने लगते हैं।

अभिप्राय यह है कि सब ओर विद्यमान साम्यावस्था में परमाणु जब परमात्मा की शक्ति (प्राण) से संयुक्त होते हैं तो वे सजग हो जाते हैं। यह सजगता उनमें इन्द्र की शक्ति के बाहर झाँकने से उत्पन्न होती है।

इसी सूक्त का अगला मन्त्र है—

युञ्जन्त्यस्य काम्या हरि विपक्षसा रथे। शोणा धृष्णू नृवाहसा।।

(ऋ० १-६-२)

अर्थ—(युञ्जन्ति अस्य रथे काम्या हरि विपक्षसा। शोणा धृष्णू नृवाहसा।) (तब) इसके रथ में कामना करते हुए दो अश्व दोनों पक्ष में जुड़ जाते हैं। चमकते हुए दृढ़ता से (रथ) परमाणु के (साथ रथ में बैठे) उपादान पदार्थ को बहा ले जाते हैं।

रथ है परमाणु और इन्द्र की दो शक्तियाँ सत्त्व तथा तमस् परमाणु के उपादान तत्त्व के साथ दृढ़ता से जुड़े हुए उसको बहाते हुए ले जाते हैं।

चित्र इस प्रकार का बनेगा—

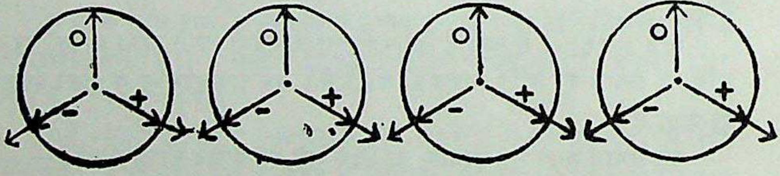

चित्र सं० ३

यहाँ धन (+) सत्त्व और ऋण (—) रजस्, अश्वों की तरह परमाणु को अन्तरिक्ष में उड़ाते हुए ले जाते हैं।

इस गति से और असमान शक्तियों के परस्पर आकर्षण और विकर्षण से क्या होता है? यह निम्नलिखित वेद मन्त्र में प्रकट किया गया है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

असि यमो अस्यादित्यो अर्वन्नसि त्रितो गुह्येन व्रतेन।
असि सोमेन समया विपृक्त आहुस्ते त्रीणि दिवि बन्धनानि।।

(ऋ० १-१६३-३)

अर्थ—(अर्वन्। यमः असि आदित्य असि गुह्येन व्रतेन त्रितः असि। सोमेन समया विपृक्तः असि ते आहु त्रीणि दिवि बन्धनानि) हे अर्वन्! तू यम(नियन्त्रण करने वाला)है, तू प्रकाशस्वरूप है। एक गुप्त प्रबन्ध से बँधा हुआ त्रित(परमाणु) है।

साम्यावस्था फटी तो कहते हैं कि अन्तरिक्ष में तीन परमाणुओं के संयोग बन गए।

ये तीन ही होते हैं। कारण की आवेश के तीन ही रूप हैं। सत्त्व, रजस् और तमस्।

ये निबन्धन कुछ इस प्रकार चित्रित किए जा सकते हैं।

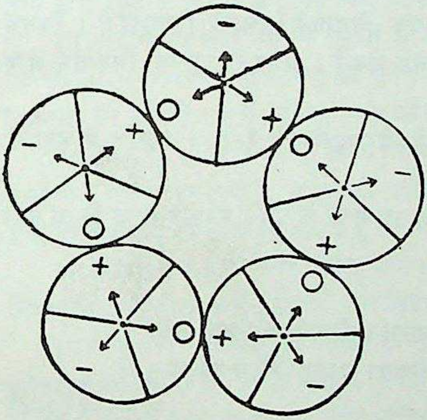

इस चित्र में परमाणुओं का एक निबन्धन (गुच्छा) है जिस का ऋण (—) आवेश शेष है। अतएव पूर्ण निबन्धन ऋण आवेश वाला है।

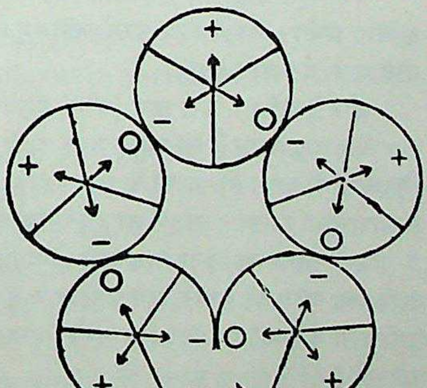

इस चित्र में परमाणुओं का एक निबन्धन (गुच्छा) दिखाया है। जिसका धन (+)आवेश शेष है। अतएव पूर्ण निबन्धन धन (+)आवेश वाला है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

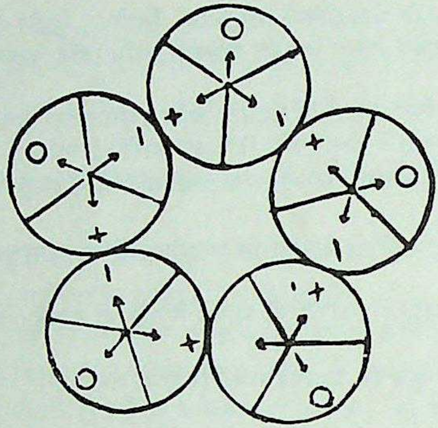

इस चित्र में परमाणुओं का एक निबन्धन (गुच्छा) दिखाया है। जिसमें प्रत्येक परमाणु का शून्य (०) आवेश शेष है। अतएव यह पूर्ण निबन्धन शून्य आवेश वाला है।

इस प्रकार निबन्धन बन जाते हैं और ऋग्वेद के १-१६३-३ मन्त्र में कहा है कि ये तीन प्रकार के हैं।

ये निबन्धन क्या करते हैं? यह इस सूक्त के अगले मन्त्र में स्पष्ट किया गया है।

मन्त्र है—

त्रीणि त आहुर्दिवि बन्धनानि त्रीण्यप्सु त्रीण्यन्तः समुद्रे।
उतेव मे वरुणश्छन्त्स्यर्वन्यत्रा त आहुः परमं जनित्रम्॥

(ऋ० १-१६३-४)

अर्थ—(ते आहुः त्रीणि बन्धनानि दिवि त्रीणि अप्सु समुद्रे अन्तः उत मे वरुणः छन्तिसः अर्वन्। यत्र ते आहु परमं जनित्रम्।) वे तीन निबन्धन द्युलोक में वही तीन आपः बन जाते हैं।

और हे अर्वन्! मेरा छन्द (मन्त्र) कहने वाला वरुण है।

यह कहा जाता है कि महान् जगत् इनसे बनता है। अभिप्राय यह है कि इन निबन्धनों में वरुण तो मन्त्रों के छन्द (छादन-ढांपने वाली तरंगें) निर्माण करता है और तीनों मिलकर सम्पूर्ण जगत् निर्माण करते हैं।

यहाँ इतना बता देना लाभकारी होगा कि वर्तमान विज्ञान में तीनों एटोमिक पार्टिकल्स जगत् को बनाने वाले माने जाते हैं। अतः तीन निबन्धन ही एटोमिक पार्टिकल्स कहे जाते हैं। इन निबन्धनों के नाम वेद में मित्र, वरुण और अर्यमा रखे गये हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक मन्त्र है—

अर्दार्शि गातुरुरवे वरीयसी पन्था
ऋतस्य समयंस्त रश्मिभिश्चक्षुर्भगस्य रश्मिभिः।
द्युक्षं मित्रस्य सादनं मर्यम्णो वरुणस्य च।
अथा दधाते बृहदुक्थ्यं वय उपस्तुत्यं बृहद्वयः॥ (ऋ० १-१३६-२)

अर्थ—(गातु: वरीयसी उरवे अर्दार्शि ऋतस्य पन्था: रश्मिभि: भगस्य चक्षू: रश्मिभि: सम अयंस्त। मित्रस्य अर्यम्ण: च वरुणस्य द्युक्षम् सादनम् अथउक्थ्यम् दधाते बृहत् वयः उपस्तुत्यं बृहत् वयःबृहत् वय) फैलने की योग्यता वाली बहुत फैलती हुई दिखाई देती है। ऋतों (प्राकृतिक नियमों) के मार्गों पर लुभायमान रश्मियों से संयुक्त होकर विख्यात हो जाती है।

मित्र, अर्यमा और वरुण अर्यमा का रहने का स्थान द्यु-लोक है। और कहे जाने वाले बहुत से भण्डार से स्तुति किए जाने योग्य और दिये जाने योग्य है।

इस मन्त्र में यह बताया है कि प्रकृति जो बहुत फैलने की योग्यता रखती है वह रश्मियों (परमात्मा की अग्नि) की लपेट में आ जाती है तो तीन प्रकार के निबन्धन बन जाते हैं। वे हैं—मित्र, वरुण और अर्यमा।

यह हम पहले ही बता चुके हैं कि ये निबन्धन तब बनते हैं जब इन्द्र की त्रि-गुणात्मक शक्ति परमाणु से बाहर को झाँकने लगती है। और उस शक्ति से प्रभावित परमाणु ही निबन्धन बनाते हैं।

इस प्रकार इन्द्र है तो सत्व, रजस् और तमस् ही। परन्तु इन्द्र का काय इन निबन्धनों द्वारा ही होता है। अतः ये तीन निबन्धन इन्द्र का प्रतीक समझे जाते हैं।

मित्र ऋण (—) विद्युत् के आवेश वाला है। वर्तमान विज्ञान में इस को इलेक्ट्रोन कहा जाता है। वरुण धन(+)विद्युत् आवेश वाला है। वर्तमान विज्ञान में इसको प्रोटोन कहा जाता है। और आवेशरहित सोम (अर्यमा) को वर्तमान विज्ञान में न्यूट्रोन कहा जाता है।

इनमें मित्र बहुत उग्ररूप में सक्रिय होने से इन्द्र का वज्र कहलाता है। मित्र और वरुण इन्द्र के सजग अंग हैं। अर्यमा अर्थात् सोम निष्क्रिय अंग है। यह आवेश-रहित है।

इस अनुच्छेद में हमने बताया है कि इन्द्र परमाणु प्रकृति के भीतर तीन प्रकार की शक्तियों का समुच्चय है। परमाणु के भीतर वे सन्तुलित अवस्था में रहती हैं।

अनादि अग्नि जिसे प्राण भी कहते हैं और जो परमात्मा की शक्ति मानी जाती है, वह वेद के कथनानुसार, जैसा कि ऋ० वेद १-१६३-२ में बताया गया है, जब लगाम बनकर परमाणु पर आरूढ़ हो जाती है तो परमाणु के भीतर की शक्तियों की कार्य-दिशा बदल जाती है। अपने आप को परमाणु के भीतर ही सन्तुलित करने के स्थान, ये परमाणु के बाहर को झाँकने लगती है और आसपास

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के परमाणुओं पर आकर्षण विकर्षण करने लगती है।

वेद में ही कहा है कि इसके उपरान्त परमाणुओं के संयोग (गुच्छे-निबन्धन) बनने लगते हैं। ये निबन्धन तीन प्रकार के होते हैं।

वर्तमान विज्ञान की खोज स्थूल पदार्थों से चलकर यहाँ तक ही पहुँच पायी है। इसके आगे अर्थात् निबन्धनों के मूल परमाणुओं की ओर वर्तमान विज्ञान झाँकने का यत्न कर रहा है।

इस सम्बन्ध में विस्तृत विवेचन एक पृथक् पुस्तक का विषय है। यहाँ उसका विशेष उल्लेख नहीं किया जा रहा।[1]

: ४ :

हमने वेद मत से इन्द्र को समझने-समझाने का यत्न किया है। हमारा मत यह है कि जहाँ-जहाँ वेद मन्त्रों अथवा सूक्तों का देवता (विषय)इन्द्र होगा, वहाँ-वहाँ वेद में इसी परमाणु के अन्तर्गत शक्ति से अभिप्राय होगा।

मन्त्र के विषय के अतिरिक्त, इन्द्र शब्द के अर्थ का, मन्त्र के शेष भाग से निर्वचन किया जायेगा।

हमने मुख्य पुस्तक में इन्द्र विषय के मन्त्र ऋग्वेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद से उद्धृत किये हैं। आपः मित्र, वरुण और सोम भी इन्द्र का प्रतीक ही होने से इनके विषय के मन्त्र भी हमने अपनी पुस्तक में दिये हैं।

इन तीनों वेदों में से इन्द्र विषय के मन्त्र देने से जहाँ हमारा यह अभिप्राय है कि इन्द्र से परमाणु के अन्तर्गत शक्ति का अभिप्राय ही है, वहाँ हमारा उद्देश्य यह बताना भी है कि इन्द्र भिन्न-भिन्न वेद के विषय में क्या कार्य सम्पन्न करता है।

उदाहरण के रूप में ऋग्वेद का मुख्य विषय है—कल्प। कल्प का अभिप्राय है सृष्टि-रचना, सृष्टि के पालन और सृष्टि-प्रलय का वर्णन। अतः हम यह देखना चाहते हैं कि इन्द्र इन तीनों कार्यों में क्या भाग लेता है। इसके अतिरिक्त सृष्टि के विघटन में इन्द्र का क्या भाग है।

इसी प्रकार यजुर्वेद का विषय है—शिक्षा। अर्थात् मनुष्य को इस संसार में जीवन चलाने के लिए इन्द्र से क्या सहायता लेनी चाहिये।

अथर्व का सम्बन्ध मुख्य रूप से उन विद्याओं से है जिन्हें मनुष्य अपनी बुद्धि से और अपने प्रयत्न से जान सकता है। खगोल-विद्या उनमें एक है। शरीर-क्रिया-विज्ञान के आधार पर शरीर रुग्ण होने पर चिकित्सा एक अन्य विषय है। भोजन वस्त्र, मकान एवं सुख सुविधापूर्वक रहने के विषय में मनुष्य क्या और किस

---

१. देखें गुरुदत्त की रचना 'विज्ञान और विज्ञान'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकार समझे तथा इन्द्र इस विषय में क्या भाग लेता है और वह किस प्रकार भाग लेता है।

इस प्रकार इस त्रयी-विद्या में इन्द्र का क्या योगदान है, यह भी जानने के लिए यत्न करना हमारा प्रयोजन है।

इस प्रकार पुस्तक के कलेवर की परिधि में रहते हुए हमने इन्द्र के विषय में जानने का यत्न किया है।

हम यहाँ पर यह भी स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि वेद में सांसारिक ज्ञान भी निहित है। आधुनिक विज्ञान भी सांसारिक ज्ञान प्राप्त करने के लिए यत्नशील है। अतः हमारा लक्ष्य यह जानना भी है कि वर्तमान विज्ञान में इन्द्र का क्या नाम है? इस बात का निश्चय हो जाने से हम वेद-विज्ञान को वर्तमान वैज्ञानिक भाषा में भली भाँति समझ और समझा पायेंगे।

हमने यह जानने का यत्न किया है कि आधुनिक विज्ञान में इन्द्र किस नाम से जाना जाता है।

वेद का विषय और आधुनिक विज्ञान का वर्तमान जगत् के अध्ययन का जो विषय हैं, ये दोनों साँझे हैं। वेद के मतानुसार इन्द्र जगत् के निर्माण में महत्त्व-पूर्ण भाग लेता है। अतः यह निश्चित है कि आधुनिक विज्ञान में इन्द्र का पर्यायवाची कुछ-न-कुछ होना चाहिये। हमने अपनी पुस्तक में यह बताया है कि आधुनिक विज्ञान में इन्द्र का क्या नाम रखा गया है।

इस पुस्तक के अध्ययन से यह विदित हो जायेगा कि इन्द्र के सामान्य अर्थ विद्युत् के हैं। दोनों, वेद और वर्तमान विज्ञान, में समान कार्य करने वाले पदार्थ आपः अथवा एटोमिक पार्टिकल्स है।

हमने बताया है कि आपः परमाणुओं के निबन्धन हैं। ये तीन हैं। आवेश में भेद होने से इन तीनों में अन्तर है। मित्र पर रजस् शक्ति का आवेश है, वरुण पर सत्त्व शक्ति का और अर्यमा अथवा सोम तो आवेश-रहित हैं।

लक्षणों से आधुनिक वैज्ञानिकों ने यह विदित किया है कि इलेक्ट्रोन पर ऋण विद्युत् का आवेश होता है। इससे यह समझ में आता है कि ऋण विद्युत् से अभि-प्राय रजस् शक्ति से है।

यह इस प्रकार पता चलता है कि ये परिमण्डल में मित्र आपः परिमण्डल की सीमा पर चक्कर काट रहे हैं। इसको हम अगले अध्यायों में स्पष्टतया समझाने का यत्न करेंगे। यहाँ तो हमारा अभिप्राय केवल यही है कि मित्र और इलेक्ट्रोन पर्यायवाची हैं। इसी प्रकार परिमण्डल एटम के सम्बन्ध में वेद में बताया है कि वरुण अर्यमा (सोम) को घेरे हुए रखते हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि वरुण तो प्रोट्रोन है और अर्यमा अर्थात् सोम है न्यूट्रोन।

इससे यह भी विदित होता है कि विद्युत्-धारा मित्र आपः की धारा होती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस प्रकार इन्द्र को वर्तमान विज्ञान में विद्युत् कहते हैं। इतना स्मरण रखना आवश्यक है कि आधुनिक विज्ञान यह नहीं बता सका कि इलेक्ट्रोन, प्रोट्रोन और न्यूट्रोन का मूल क्या है? वेद में इन (मित्र, वरुण और अर्यमा) के उस मूल का पता किया गया है कि जिससे आगे कोई मूल ही नहीं। अर्थात् जो अन्तिम मूल है, वह है प्रकृति के परमाणु। जिसे वेद में त्रित कहा है। त्रित का अभिप्राय है तीन शक्तियों का गुप्त संयोग। इन शक्तियों के साथ परमाणु में कुछ उपादान पदार्थ भी रहता है। शक्ति और उपादान में अन्तर यह है कि उपादान शक्तिविहीन परन्तु कुछ अस्तित्व-युक्त पदार्थ होता है। द्रव्यमान पदार्थ प्रकृति के कुछ अंश का नाम है और भार भिन्न गुण है। उसका द्रव्यमान के साथ सीधा सम्बन्ध क्यों नहीं है। एक वस्तु के पदार्थ का भार भिन्न-भिन्न स्थानों पर भिन्न-भिन्न हो सकता है।

यह परमाणु में उपादान पदार्थ की विद्यमानता का कथन है। इसमें ही इन्द्र की त्रिगुणात्मक शक्ति स्थित है। हमने ऊपर ऋ० १-६-२ की व्याख्या करते हुए बताया है कि इन्द्र की शक्ति परमाणु के उपादान पदार्थ से दृढ़ता से जुड़ी हुई है। इसका अभिप्राय यह है कि इन्द्र जहाँ-जहाँ जाता है वह उपादान पदार्थ जिसके साथ वह जुड़ा हुआ है उसके साथ ही जाता है। इस उपादान पदार्थ को विज्ञान में क्वाण्टम कहते हैं। प्रत्येक परमाणु के पदार्थ में एक निश्चित मात्रा में शक्ति रहती है।

शक्ति के दो रूप हैं—ऋण(—)और धन(+)। अतः दो प्रकार की शक्तियों की धारा इन क्वाण्टमों के साथ हो सकती है। इन्द्र की तृतीय शक्ति तो शून्य है। अर्थात् वे क्वाण्टम आवेश रहित होते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

R 089.9143
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
R 089.9143
GUR-U
Central Library
Gurukula Kangri (Deemed to be University) Haridwar
167983

प्रथम अध्याय

: १ :

इन्द्र की उत्पत्ति का समय और उसका कार्य (ऋग्वेद में)

वेद में उत्पत्ति का अर्थ होता है उसका अपने रूप में प्रकट होना। वास्तव में वेद के मतानुसार तो केवल तीन ही पदार्थ हैं जो अक्षर और अनादि हैं। वे तीन पदार्थ हैं—परमात्मा, जीवात्माएँ और प्रकृति के परमाणु।

इस कारण जगत् के असंख्य पदार्थों की उत्पत्ति का अर्थ है उनका अनादि तत्त्वों के संयोग-विशेष का होना। अतएव इन्द्र की उत्पत्ति का भी अर्थ हुआ—इन्द्र का अपने रूप में प्रकट होना।

इस पुस्तक के प्राक्कथन में ऋ० १-६-१, २ की व्याख्या में हमने बता दिया है कि साम्यावस्था में जब परमाणु परमात्मा के प्राण के नियन्त्रण में आते हैं तो परमाणु के भीतर बैठा इन्द्र बाहर प्रकट हो जाता है। इन्द्र के प्रकट होने पर परमाणु को दो अश्व लग जाते हैं। अर्थात् दो प्रकार की शक्तियाँ इस परमाणु को अन्तरिक्ष में इधर-उधर भगाने लगती हैं। परमाणु की तुलना रथ से की गई है। इस पुस्तक के प्राक्कथन में हमने इस स्थिति का सचित्र वर्णन किया है।

हमारे इस कथन का अर्थ यह है कि इन्द्र की उत्पत्ति अथवा इसका प्रकट होना उस समय हुआ जब साम्यावस्था में परमाणु पर परमात्मा की प्राण-शक्ति आरूढ़ हुई। दूसरे शब्दों में इसको वर्तमान कल्प का आरंभ कहना चाहिये।

इन्द्र की उत्पत्ति के विषय में यास्क के मत का उल्लेख कर देना हम आवश्यक समझते हैं। यास्क निरुक्त (७-३) की व्याख्या पर कहता है—

…एकस्यात्मनोऽन्ये देवा: प्रत्यङ्गानि भवन्ति।।

अर्थात्—एक ही तत्त्व से अन्य सब देवता अंग-अंग से उत्पन्न हुए हैं। यह एक तत्त्व है—प्रकृति। अर्थात् सब देवता प्रकृति के भिन्न-भिन्न अंगों से उत्पन्न हुए हैं।

इसका अर्थ यह भी होता है कि इन्द्र सब देवताओं के पहले प्रकट हुआ। इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषय में ऋग्वेद में कहा है—

सुरूपकृत्नुमूतये सुदुधामिव गोदुहे । जुहूमसि द्यविद्यवि ॥ (ऋ० १-४-१)

अर्थ—(सुदुधाम् इव सुरूप कृत्नुम् ऊतये गो दुहे) सुगमता से दुही जाने वाली गाय की भाँति सुन्दर निर्माण करने वाले (इन्द्र) की रक्षा के लिए—

(जुहूमसि द्यवि द्यवि) हम दिनानुदिन स्तुति करते हैं।

मन्त्र का अभिप्राय है कि इन्द्र के गुण, कर्म, स्वभाव का हम बार-बार नित्य चिन्तन करते हैं। इन्द्र सुगमता से उत्पन्न होता है जैसे कि गाय सुगमता से दुही जाती है। गाय है प्रकृति। प्रकृति दुही जाती है तो सुगमता से निर्माण करनेवाला इन्द्र प्रकट हो जाता है।

यह भी कहा है—

यो जात एव प्रथमो मनस्वान्देवो देवान् क्रतुना पर्यभूषत् ।
यस्य शुष्माद्रोदसी अभ्यसेतां नृम्णस्य मह्ना स जनास इन्द्रः ॥
(ऋ० २-१२-१)

इस मन्त्र का देवता अर्थात् विषय 'इन्द्र' है।

अर्थ—(यः मनस्वान् एव प्रथमो जातः) जो मन के गुणों वाला जगत् में पहले प्रकट हुआ।

(देवः देवान् क्रतुना परि-अभूषत्) जो (दिव्य गुणों वाले देवताओं को सजाता है) उपकारी बनाता है;

(यस्य शुष्मात् रोदसी अभ्यसेताम् नृम्णस्य मह्ना) जिसके बल से पृथिवी और आकाश पृथक्-पृथक् होते हैं और जिससे सब डरते हैं;

(स जनासः इन्द्रः) हे मनुष्यो! वह 'इन्द्र' है।

इस मन्त्र में कहा गया है कि इन्द्र सबसे पहला दिव्य गुण वाला पदार्थ है जो प्रकट हुआ।

अतः वेद कहता है कि—इन्द्र परमाणु के अन्तर्गत शक्ति है। रचना-कार्य में यह सबसे पहले उत्पन्न हुआ।

: २ :

इन्द्र के सामान्य गुण

जब यह 'इन्द्र' उत्पन्न हुआ तो यह मन के गुणों वाला था। इसके दो अभिप्राय हैं। एक तो यह कि यह मन की गति से भागने वाला था और दूसरा यह कि इसमें मन की स्मृति आदि गुण होते हैं। दोनों बातें ठीक हैं।

जिन परमाणुओं के इन्द्र के अश्व प्रकट हो जाते हैं वे परमाणु-समूह महत् कहाते हैं और महत् का पहला परिणाम मन एवं बुद्धि है। मन और बुद्धि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

असाम्यावस्था में परमाणुओं के दो अथवा तीन के संयोग ही होते हैं। वे द्वय-णुक अथवा त्र्यणुक कहे जाते हैं। इनको मन के कण अथवा आधुनिक विज्ञान के अनुसार 'इलेक्ट्रोन' कहते हैं।

इन्द्र ही रचना-कार्य को आगे चलाता है। पृथिवी और आकाश को पृथक्-पृथक् करता है और यह इतना तोड़-फोड़ करने वाला है कि सब इससे डरते हैं।

एक बात इस इन्द्र के परमाणुओं को अन्तरिक्ष में इधर-उधर भगाने से यह होती है कि गति उत्पन्न होती है। इसे वायु कहा गया है। वायु गति अर्थ वाला शब्द है। यह गति ही वायु—मातरिश्वा है। क्योंकि यह अन्तरिक्ष में विचरने वाला है इस कारण यह 'मातरिश्वा' कहलाता है।

यह गति होती रहती है। उसका कारण यह है कि इन्द्र के अश्व परमाणुओं को अन्तरिक्ष में भ्रमण कराते रहते हैं। ये अश्व भी तब तक ही कार्य करते हैं जब तक परमाणु 'वियुक्त' अर्थात् फटा रहता है और इन्द्र परमाणु से बाहर झाँकता रहता है। अर्थात् जब तक परमात्मा की शक्ति प्राण, अथवा जिसे 'वैश्वानर' भी कहा है, परमाणु पर आरूढ़ रहती है। इस रूप में परमात्मा की शक्ति वैश्वानर अग्नि कही जाती है।

वैश्वानर अग्नि इन्द्र को परमाणु से बाहर कार्य करने के योग्य बनाती है। अतः जब तक वैश्वानर अग्नि परमाणु पर सवार रहती है तब तक जगत् कार्य करता रहता है और अग्नि वैश्वानर अग्नि कहाती है। अर्थात् जगत् को कार्यरत रखती है।

यह वैश्वानर अग्नि परमाणु को खुला रखती है परन्तु कार्य इन्द्र की शक्ति से ही करती है।

इन्द्र का प्रथम कार्य है—आपः (परमाणुओं) के निबन्धन बनाना। इसके विषय में प्राक्कथन में विस्तार से वर्णन कर चुके हैं।

इन्द्र के सामान्य गुणों का वर्णन ऋ० २-१२ में विस्तार से किया गया है। इस सूक्त के कुछ मन्त्रों को हम यहाँ उद्धृत करना चाहते हैं, जिससे कि इन्द्र का सामान्य दर्शन पाठकों को हो जाय।

इस सूक्त का प्रथम मन्त्र ऊपर दे चुके हैं। अब हम दूसरा मन्त्र प्रस्तुत कर रहे हैं, जो इस प्रकार है—

यः पृथिवीं व्यथमानामदृहद्यः पर्वतान्प्रकुपितां अरम्णात्।
यो अन्तरिक्षं विममे वरीयो यो द्यामस्तभ्नात्स जनास इन्द्रः॥

(ऋ० २-१२-२)

अर्थ—(यः व्यथमानाम् पृथिवीं अदृहत् यः प्रकुपितात् पर्वतान् अरम्णात्) जो अस्थिर चलायमान पृथिवी को सुदृढ़ करता है, जो प्रकुपित पर्वतों, ज्वालामुखियों को, स्थिर (शान्त) करता है;

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(यः वरीयः अन्तरिक्षम् वि-ममे यः द्याम् अस्तभ्नात् सः जनासः इन्द्रः) जो विशाल अन्तरिक्ष को रचता है जो द्युः (सूर्य) को स्थापित करता है, हे मनुष्यो ! उसे इन्द्र जानो।

अन्तरिक्ष से अभिप्राय है—अन्तरिक्ष में नक्षत्रादि।

इसी सूक्त का अगला मन्त्र है—

यो हत्वाहिमरिणात्सप्तसिन्धून्यो गा उदाजदपधा बलस्य।
यो अश्मनोरन्तरग्निं जजान संवृक्समत्सु स जनास इन्द्रः॥

॥ऋ० २-१२-३॥

अर्थ—(यः अहिम् हत्वा सप्त सिन्धून् अरिणात्) जो कुण्डली को (आपः के घेरे को) तोड़-फोड़कर सात धाराओं को चलाता है।

(यः बलस्य अपधा गाः उत्-आजत्) जो बल के छिपे हुए स्थानों से किरणों को बाहर निकालता है;

(यः अश्मनः अन्तः अग्निम् जजान समत्सु संवृक् स जनासः इन्द्रः) जो दो पत्थरों के बीच से अग्नि उत्पन्न करता है, जो संघर्षों में तोड़-फोड़ देने वाला है, हे मनुष्यो ! वह इन्द्र है।

इस प्रकार इस सूक्त में इन्द्र के समस्त कार्यों का वर्णन किया है। इस सूक्त में पन्द्रह मन्त्र हैं। सबमें इन्द्र के कार्यों का ही उल्लेख है। हम उन सब कार्यों की सूची नीचे दे रहे हैं। केवल उदाहरण के रूप में हमने तीन मन्त्रों का यहाँ उल्लेख किया था।

ऋग्वेद के सूक्त २-१२ में इन्द्र के निम्नलिखित गुणों का वर्णन किया गया है। यहाँ केवल मन्त्रों का भावार्थ ही दिया जा रहा है, स्थानाभाव के कारण मन्त्र नहीं दिये जा रहे हैं।

१. इन्द्र देवताओं में सर्वप्रथम उत्पन्न हुआ। दिव्यगुण-युक्त पदार्थ को देवता कहते हैं, ऐसे पदार्थों में सबसे पहले इन्द्र उत्पन्न हुआ।

२. यह अन्तरिक्ष और पृथिवी के पदार्थों को बनाता है और वह इससे भय खाते हैं। इसका अभिप्राय है कि वह बनाता भी है और उनका तोड़-फोड़ भी करता है।

३. वह पृथिवी और पृथिवी पर के सब पदार्थों को स्थिर करता है। अर्थात वे नियमपूर्वक गति में इन्द्र के कारण ही चल रहे हैं।

४. यह परिमण्डलों (ऐटम्स) के बनाने में सहायक होता है। बड़े-बड़े परिमण्डलों को तोड़कर छोटे बनाता है।

५. भू-आकर्षण (ग्रेविटी) इसके कारण ही प्रकट होता है, जब परस्पर पत्थर टकराने से अग्नि उत्पन्न होती है अथवा चुम्बकीय पत्थर में आकर्षण भी इसके कारण ही उत्पन्न होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

६. इन्द्र की शक्ति दिखाई नहीं देती। इस पर भी यह निर्माण कर रही है। निर्माण में तोड़-फोड़ और संयोग दोनों होते हैं। ये दोनों कार्य इन्द्र की शक्ति से हो रहे हैं।

७. यह बलवान् और निर्बल के शरीरों में कार्य करती है। शरीर में पाँच प्रकार की वायु तो परमात्मा की अनादि शक्ति है। परन्तु शरीर-निर्माण और इन्द्रियों तथा मन-बुद्धि के कार्य इन्द्र की शक्ति से होते हैं।

८. सूर्य के प्रकाश की किरणें तथा ऊष्मा की किरणें सूर्य में इन्द्र के कार्य का ही परिणाम हैं।

९. युद्ध में जो दो पक्ष युद्धरत होते हैं उन दोनों में ही पौरुष और बल इन्द्र की शक्ति का फल है। युद्ध में दोनों पक्ष इन्द्र की स्तुति करते हैं। स्तुति से अभि-प्राय है कि दोनों पक्ष इन्द्र के गुण, कर्म और स्वभाव का ज्ञान प्राप्त कर युद्ध में प्रयोग करते हैं।

इसका अर्थ है कि शस्त्रास्त्र, विशेष रूप में दिव्यास्त्रों में इन्द्र की शक्ति कार्य कर रही होती है और दोनों पक्ष इसका प्रयोग करते हैं।

इसका अभिप्राय यह है कि इन्द्र प्रकृति का एक रूप होने से स्वयं इच्छा आदि गुण नहीं रखता। जो भी इसका प्रयोग कर सकता हो, वह कर सकता है।

१०. कष्ट सहन करने का सामर्थ्य भी इन्द्र के ही कारण प्राप्त होता है। जब कोई मनुष्य सुदीर्घकाल तक ब्रह्मचर्य का पालन कर स्वाध्याय इत्यादि करता है तो यह इन्द्र-शक्ति के कारण ही करता है।

११. जो इन्द्र की अवज्ञा करते हैं अर्थात् जो उसके नियमों का पालन नहीं करते, वह (इन्द्र) उन्हें मार देता है।

इन्द्र विद्युत् है, विद्युत् के कार्य के नियम हैं। उनको जानकर उनके अनुसार कार्य करने वाले की इन्द्र सहायता करता है। जो उन नियमों का पालन नहीं करते इन्द्र उनको हानि पहुँचाता है।

१२. सूर्य की किरणों में इन्द्र की शक्ति ही पृथिवी पर आ रही है। प्रकाश, ऊष्मा उसके कारण ही हैं।

१३. उषाकाल का प्रकाश (सूर्योदय से पूर्व आकाश में फैलने वाला प्रकाश) तथा सृष्टि रचना के उदय काल में हिरण्यगर्भ में उत्पन्न होने वाला प्रकाश सब इन्द्र के कारण ही है।

१४. जगत् का निर्माण इन्द्र करता है, परन्तु जगत् में सौन्दर्य परमात्मा की शक्ति के प्रभाव से ही उत्पन्न होता है। यह शक्ति वायु है। शक्ति परमाणुओं को उचित रूप में संगठित करती है। वायु परमात्मा की शक्ति मानी जाती है।

१५. जगत्-रचना के समय उपकारी और व्यर्थ के पदार्थों को पृथक्-पृथक् कर देता है। इसे छानना कहा गया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१६. इन्द्र के स्वभाव को जानने वाले (इलेक्ट्रिकल इन्जीनियर्स) इससे लाभ उठाते हैं।

वर्तमान विज्ञान में इन्द्र विद्युत्-शक्ति का नाम है। इसके तीन रूप हैं—ऋण (--) धन (+) और शून्य (०) आवेश की अवस्था। ये तीन अवस्थायें तीन प्रकार के आपः मित्र, वरुण, अर्यमा अर्थात् सोम हो जाती हैं। मित्र को वर्तमान विज्ञान में इलेक्ट्रोन कहते हैं और विद्युत् की धारा मित्र आपः की धारा ही है।

आपः के विषय में हम पहले ही बता आये हैं कि वह परमाणुओं का निबन्धन है और आवेश के कारण में भेद होता है।

: ४ :

इन्द्र का प्रथम शौर्य का कार्य

इन्द्र का कार्य आपः के बन जाने के उपरान्त ही आरम्भ होता हैं। हमने पहले ही यह स्पष्ट कर दिया है कि आपः तीन प्रकार के होते हैं—मित्र (इलैक्ट्रोन), वरुण (प्रोटोन) और सोम (न्यूट्रोन)।

इनमें जो मित्र आपः हैं, वे द्रव्यमान के आधार पर बहुत छोटे-छोटे होते है और वरुण एवं सोम बहुत बड़े-बड़े बनते हैं। सोम आवेश-रहित होते हैं। इस कारण ये दोनों मित्र और वरुण से आकर्षित होते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि मित्र आपः और वरुण आपः में सोम आपः को अपनी ओर आकर्षित करने में प्रथम संघर्ष होता है। इस संघर्ष का वर्णन और उसके परिणाम का वर्णन ऋ० १-३२ में किया गया है। हम इस कण्डिका में इस सूक्त को उद्धृत कर रहे हैं।

परन्तु इससे पूर्व इस संघर्ष का वर्णन शतपथ ब्राह्मण में जिस प्रकार दिया है, उसको उद्धृत करते हैं।

शतपथ ब्राह्मण ६-१-१-१, २ की व्याख्या हम इससे पूर्व कर आये हैं। वहाँ हमने यह बताने का यत्न किया है कि इन्द्र पहले ऋषियों के भीतर था। ऋषियों से अभिप्राय है साम्यावस्था में परमाणु। दोनों शान्त स्वभाव के होते हैं।

वहाँ कहा गया है कि जब ऋषि असाम्यावस्था में हो जाते हैं तब उस समय इन्द्र जो मध्य में था, वह प्रकट हो जाता है। उसी स्थल पर आगे कहा गया है—

...इद्धाः सप्त नाना पुरुषानसृजन्त (श० ब्रा० ६-१-१-२)

अर्थात्—इन दीप्त हुए ने सात पृथक्-पृथक् पुरुष उत्पन्न किये।

ये सात पुरुष हैं—मित्र, वरुण, सोम, वायु, जातवेद अग्नि, भू-आकर्षण और चुम्बकीय शक्ति।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वहाँ यह भी कहा गया है कि ये शक्तियाँ पृथक्-पृथक् रहकर रचना-कार्य नहीं कर सकती थीं। अतः ब्राह्मण में यह उल्लेख आया है—

तेऽब्रुवन्। न वा इत्थं ने सन्तः शक्ष्यामः प्रजनयितुमिमान्सप्त पुरुषानेकं करवामेति तऽएतान्तसप्त पुरुषानेकं पुरुषमकुर्वन्यदूर्ध्वं नाभेस्तौ द्वौ समौब्जन्यदवाङ् नाभेस्तौ द्वौ पक्षः पुरुषः पक्षः पुरुषः प्रतिष्ठैक आसीत् (श०ब्रा० ६-१-१-३)

अर्थ—वे कहने लगे, इस प्रकार रहते हुए तो रचना-कार्य में समर्थ न हो सकेंगे। इन सातों का एक पुरुष बना दो।

उन्होंने सातों पुरुषों का एक पुरुष बना दिया। दो को दबाकर नाभि के नीचे का भाग बना दिया। दो में से एक-से-एक पहलू और दूसरे में से दूसरा पहलू। एक को प्रतिष्ठा अर्थात् स्थिर का स्थान दे दिया।

हम समझते हैं कि शतपथ ब्राह्मण का यह कथन अलंकारयुक्त है। अतः इसमें बहुत कुछ व्यर्थ भी है। इस प्रक्रिया का कथन ऋ० १-३२ सूक्त में किया गया है। सूक्त का देवता (विषय) इन्द्र है।

इस सूक्त का प्रथम मन्त्र इस प्रकार है—

इन्द्रस्य नु वीर्याणि प्र वोचं यानि चकार प्रथमानि वज्री।
अहन्नहिमन्वपस्ततर्द प्र वक्षणा अभिनत् पर्वतानाम्॥

(ऋ० १-३२-१)

अर्थ—(वज्री, इन्द्रस्य प्रथमानि वीर्याणि अहिम् अहन् यानि चकार प्र वोचम्।) वज्रधारी इन्द्र का प्रथम शौर्य का कार्य अहि को नष्ट करने का कहता हूँ।

अहि का अर्थ है साँप (सांप की कुण्डली को भी अहि कहा गया है)। यहाँ जो अभिप्राय लिया गया है वह साँप की कुण्डली की भाँति स्थित से लिया गया है।

जब निबन्धन बन गये और परमात्मा की शक्ति से धन विद्युत् के आवेश वाले बड़े-बड़े बने तो आवेश-रहित आपः को अपनी ओर आकर्षित करने लगे। आवेश रहित आपः के बड़े-बड़े गुच्छे बने हुए थे। उनको गाँठें कहा है। अतः वरुण आपः ने उन गाँठों पर आक्रमण कर दिया। उनको अपने घेरे में ले लिया। इस घेरे को 'अहि' कहा है।

मन्त्र में कहा गया है कि वज्री इन्द्र ने (वज्र है मित्र आपः) कुण्डली अर्थात् वरुण के घेरे पर आक्रमण किया। उसकी गाँठों को तोड़-फोड़ दिया।

वास्तविकता यह थी कि वरुण (+) धन विद्युत् का आवेश रहने के कारण आवेश-रहितों को अपने घेरे में लेता है और मित्र (—) ऋण विद्युत् का आवेश रहने से धन विद्युत् वाले वरुणों को अपनी ओर आकर्षित करता है, जिससे वरुणों की कुण्डली टूट जाती है। इसी आकर्षण-विकर्षण को अलंकार के रूप में संघर्ष कहकर वर्णन किया है।

सूक्त का अगला मन्त्र इस प्रकार है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अहन्नहिं पर्वते शिश्रियाणं त्वष्टास्मै वज्रं स्वर्यं ततक्ष।
वाश्रा इव धेनवः स्यन्दमाना अञ्जः समुद्रमवजग्मुरापः॥

(ऋ० १-३२-२)

अर्थ—(अहिम् अहन् पर्व तेशिश्रियाणम् त्वष्टास्मै स्वयं वज्रं ततक्ष।) गाँठों में आश्रय लिये हुए कुण्डली को तोड़-फोड़ दिया। त्वष्टा ने इसके लिये (इन्द्र के लिये) बहुत बढ़िया वज्र बनाया था।

इन्द्र का वज्र हम ऊपर वर्णन कर आये हैं कि वह मित्र आप: है। ये मित्र आप: त्वष्टा के घड़े थे। त्वष्टा सूर्य के ऊपर के क्षेत्र को कहते हैं। ये मित्र आप: इलेक्ट्रोन वहीं बनते हैं।

(स्यन्दमाना: आप: समुद्रं अञ्जः अवजग्मु: वाश्रा इव धेनव:) चलते हुए आप: अन्तरिक्ष को तुरन्त प्राप्त होते हैं जैसे बछड़े को प्रीति करती हुई गाय।

यहाँ अलंकारयुक्त वर्णन किया गया है कि जैसे गाय अपने बछड़े को अपने नीचे लेती है वैसे ही अन्तरिक्ष में बन रहे मित्र, आप: को अपने में ले लेता है। यह बताया है कि मित्र आप: त्वष्टा में बनते हैं।

सूक्त का अगला मन्त्र इस प्रकार है—

वृषायमाणोऽवृणीत सोमं त्रिकद्रुकेष्वपिबत्सुतस्य।
आ सायकं मघवादत्त वज्रमहन्नेनं प्रथमजामहीनाम्॥

(ऋ० १-३२-३)

अर्थ—(वृषायमाण: सोमं अवृणीत सुतस्य त्रिकद्रुकेषु अपिवत्) बलवान् सोम को वरा। सन्तान (जगत् के निर्मित पदार्थों) के तीन प्रकार के व्यवहारों में पी लिया (स्वीकार किया)।

(मघवा सायकं वज्रम् आ अदत्त) इन्द्र ने शक्तिशाली वज्र को लिया।

(एनं प्रथम जामथहीनाम् अहन्) इन पहले बनी कुण्डलियों को तोड़ डाला।

ऊपर के मन्त्र में जो बात कही गई थी उसकी इसमें व्याख्या कर दी गई है। कहा है कि सोम अर्थात् अर्यमा आप: बहुत पुष्ट (बड़े-बड़े) हो गये। उनको दृश्यमान कहा गया है। वरुणों ने उनको वरा। अर्थात् अपने अधीन कर लिया। उनके चारों ओर घेरा डाल लिया। इसी घेरे को 'अहि' साँप की-सी कुण्डली कहा है। इन्द्र के वज्र, मित्र आप: ने वरुणों पर आक्रमण कर दिया और कुण्डली को तोड़ दिया।

सूक्त का अगला मन्त्र है—

यदिन्द्राहन्प्रथमजामहीनामान्मायिनाममिनाः प्रोत मायाः।
आत्सूर्यं जनयन्द्यामुषासं तादीत्ना शत्रुं न किलाऽविवित्से॥

(ऋ० १-३२-४)

अर्थ—(उत् इन्द्र यत् अहीनाम प्रथम-जाम् अहन् आन् मायाः अमिनाः) और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हे इन्द्र ! कुण्डलियों में प्रथम उत्पन्न हुए पर तुम जब प्रहार करते हो तो तुम रचितों की रचना भली प्रकार नष्ट कर देते हो।

(आत् सूर्यं द्याम् उषासम् जनयन् तादीत्ना शत्रुम् न विवित्से किल) उस समय सूर्य को, द्युलोक को, उषा (प्रकाश) को उत्पन्न करते हो।) तदनन्तर शत्रु को (तुमने) नहीं पाया। शत्रु थे वरुण—विपरीत आवेश वाले—वे नष्ट हो गये थे, नहीं रहे थे।

मन्त्र का अभिप्राय यह है कि जब मित्र और वरुण में घात-प्रतिघात होते हैं तो प्रकाश उत्पन्न होता है। इसे उषा कहते हैं। यह वह चमक है जो हिरण्यगर्भ (नेबुला) में दिखाई देती है। अथवा जो सूर्य के प्रकाश में है।

इस समय वरुण जिन्हें वृत्र कहा है, नष्ट हो जाते हैं। वरुणों को वृत्र इस कारण कहा है क्योंकि ये सोमों को ढाँपते हैं। वृत्र का अर्थ है ढाँपने वाले।

अगला मन्त्र है—

अहन्वृत्रं वृत्रतरं व्यंसमिन्द्रो वज्रेण महता बधेन।
स्कन्धांसीव कुलिशेना विवृक्णाहिः शयत उपपृक् पृथिव्याः॥

(ऋ० १-३२-५)

अर्थ—(इन्द्रः वृत्रं वृत्रतरं वि-अंसं अहन् महता वधेन वज्रेण) इन्द्र वृत्रों को और वृत्रों से भी बड़ों के अवयवों पर प्रहार करता है और महान् वज्र से मार डालता है।

(अहिः कुलिशेना स्कंधांसि इव वि-वृक्णा पृथिव्याः उपपृक् शयते) शरीर के अवयवों की भाँति तेज शस्त्र से टुकड़े-टुकड़े हुई अहि (कुण्डली) पृथिवी पर (किसी ठोस वस्तु पर) लेट जाती है।

वरुणों के बड़े-बड़े समूह बन जाते हैं और उनसे भी बड़े-बड़े समूह सोमों के बन जाते हैं। इन्द्र मित्र आपः से उन पर प्रहार करता है और उनके टुकड़े पृथिवी की भाँति (ठोस पदार्थ की भाँति) बन लेट जाते हैं।

यह समझ लेना चाहिये कि आपः मित्र, वरुण और सोम का द्रव्यमान तो होता है परन्तु उनका भार नहीं होता। भार तो तब प्रकट होता है जब भू-आकर्षण प्रकट होता है। भार की उत्पत्ति भू-आकर्षण से होती है। भू-आकर्षण पञ्चतन्मात्रा में से एक है। पञ्च-तन्मात्रा बनते हैं जब मित्र, वरुण और सोम परस्पर बँधकर इकाइयाँ बना लेते हैं। उनको बनाने के लिए इससे पूर्व के मन्त्र में तथा इस मन्त्र में भी प्रयास का वर्णन किया है। ये अभी बने नहीं हैं। अभी तो इकाइयों का बनाना ही बताया जा रहा है।

सूक्त का अगला मन्त्र है—

अयोद्धेव दुर्मद आ हि जुह्वे महावीरं तुविबाधमृजीषम्।
नातारीदस्य समृतिं बधानां सं रुजानाः पिपिष इन्द्रशत्रुः॥

(ऋ० १-३२-६)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थ—(दुर्मदः अयोद्धा इव हि महावीरं तुविबाधं ऋजीषं आ जुह्वे) मद-मस्त (तम आपः) न लड़ने वालों की भाँति निश्चय से महावीर वध करने को ललकारता है।

इस वाक्य का अर्थ है कि आवेश-रहित आपः भी आकर्षण करता है मित्र को, जो कि उस पर चोट करने जा रहा है।

यह सर्वविदित है कि आवेश-रहित और आवेश वालों में भी आकर्षण होता है। यही अलंकार-रूप में बताया है कि आवेश-रहित आपः भी आक्रमण करने वाले को आकर्षित करता है।

(अस्य वधानां न अतारीत् इन्द्रशत्रुः समृतिम् रुजानाः सं पिपिषे) इन संहार हुओं का पार न पा सकने पर इन्द्र के शत्रु (वरुण) उन संहार हुओं में मिल गया। इन्द्र ने टुकड़े-टुकड़े कर पीस डाला था।

हम यह पहले ही बता चुके हैं कि इन्द्र यह कार्य 'मित्र' की सहायता से कर रहा है। इसी कारण मित्र आपः इन्द्र का वज्र कहलाता है। वस्तु-स्थिति यह है कि जब मित्र वरुण से सम्पर्क में आता है तो दोनों आवेश-रहित हो सोमो (आवेश रहितों) में मिल जाते हैं। इस कारण आवेश-रहित आपः की संख्या में वृद्धि हो जाती है। यह सब टुकड़े-टुकड़े हो जाता है।

अगला मन्त्र है—

अपादहस्तो अपृतन्यदिन्द्रमास्य वज्रमधि सानौ जघान।
वृष्णो बध्रिः प्रतिमानं बुभूषन् पुरुत्रा वृत्रो अशयद् व्यस्तः॥

(ऋ० १-३२-७)

अर्थ—(अपात् अहस्तः इन्द्र अपृतन्यत् अस्य सानौ अधिवज्रं आ जघान।) बिना हाथ पाँव के (तमस आपः) इन्द्रः को युद्ध के लिये ललकारते हैं। इस पर वज्र चारों ओर से चोटी पर प्रहार करता है।

(बध्रिः वृष्णः प्रतिमानं बुभूषन् वृत्रः पुरुत्रा वि अस्तः अशयद्) पुरुषत्वहीन (आवेश-रहित) आपः शक्तिशाली की नकल उतारने की इच्छा करता हुआ बहुत स्थानों पर नीचे लेट जाता है।

अर्थात् सोम आपः पराजित हो शान्त हो जाता है।

सूक्त का अगला मन्त्र है—

नदं न भिन्नममुया शयानं मनो रुहाणा अति यन्त्यापः।
याश्चिद्वृत्रो महिना पर्य्यतिष्ठत्तासामहिः पत्सुतः शीर्बभूव॥

(ऋ० १-३२-८)

अर्थ—(अमुया शयानं अपः मनः रुहाणाः यन्ति अति भिन्नं नदं न) इस पर सोमों (सोये हुओं) को मन (अतिवेग) से उठने वाले आपः अतिक्रमण कर जाते हैं, टूटी (किनारे वाली) नदियों की भाँति।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(याः चित् वृत्रः महिना परि आ तिष्ठत् अहिः तासाम् पत्सुतः बभूव) और जिनको अपनी महिमा से वृत्र चारों ओर से घेरकर ठहरे हुए हैं उनके पाँव में कुण्डली हो जाते हैं।

इस मन्त्र में कहा है कि मित्र आपः बहुत वेग से चलते हैं और सोये हुओं को अतिक्रमण कर जाते हैं। ठीक वैसे ही जैसे जल उस नदी से बाहर निकल जाता है जिसके किनारे टूटे हुए हों।

सोम आवेश-रहित आपः को वृत्र चारों ओर से घेरे हुए थे ऐसे ही जैसे पाँव में कुण्डली (बन्धन) बने हुए हों।

अगला मन्त्र इस प्रकार है—

नीचावया अभवद्वृत्रपुत्रेन्द्रो अस्या अव बधर्जभार।
उत्तरा सूरधरः पुत्र आसीद्दानुः शये सहवत्सा न धेनुः॥

(ऋ० १-३२-९)

अर्थ—(वृत्रपुत्र नीचा-वया अभवत् इन्द्रः अस्याः अव वधः जभार) पुत्र है वृत्र जिसका, वे नीचे की गति वाले हो गये। (वृत्र कुण्डली का पुत्र माना है वह नीचे झुक गई) इन्द्र ने उसके (कुण्डली) नीचे से प्रहार किया।

(उत्तरा सूः अधरः पुत्र आसीत् दानुः शये सहवत्साः न धेनुः) ऊपर माता (कुण्डल) नीचे पुत्र सोम आपः था। दानवी (कुण्डली) पुत्र के साथ सोई हुई थी जैसे गाय बछड़े के साथ।

स्थिति इस प्रकार वर्णन की है कि वरुण आपः ने घेरा सोम आपः को, अपने नीचे ऐसे ले लिया जैसे गाय अपने बछड़े को लेती है।

अलगा मन्त्र है—

अतिष्ठन्तीनामनिवेशनानां काष्ठानां मध्ये निहितं शरीरम्।
वृत्रस्य निण्यं वि चरन्त्यापो दीर्घन्तम आशयदिन्द्रशत्रुः॥

(ऋ० १-३२-१०)

अर्थ—(काष्ठानां अतिष्ठन्ती नाम अनिवेशनानां मध्ये शरीरम् निहितम्) सीमावर्ती आपः अस्थिर मार्गों पर चलने वाले हैं। मध्य में शरीर स्थित है।

(इन्द्र शत्रुः वृत्रस्य निण्यं आपः विचरन्ति तमः दीघ्रम् आशयत्) इन्द्र के विरोधी (इन्द्र के कार्य का विरोध करने वाले वरुण और सोम) नीचे अकिंचन (की भाँति) ले दे हुए हैं। जैसे गाय के नीचे बछड़ा सोया रहता है।

यह (ऐटम) परिमण्डल के रूप का वर्णन किया है। मित्र (इलेक्ट्रोन) सीमा पर वेग से अनिश्चित गति से चल रहे हैं और मध्य में वरुण (प्रोटोन) तथा सोम (न्यूट्रोन) शरीर के रूप में हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

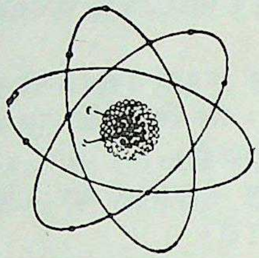

मित्र (इलेक्ट्रोन)
वरुण (प्रोटान)
तमः=सोम (न्युट्रोन)

सूक्त का अगला मन्त्र है—

दासपत्नीरहिगोपा अतिष्ठन्निरुद्धा आपः पणिनेव गावः।
अपां विलमपिहितं यदासीद्वृत्रं जघन्वां अप तद्ववार।।

(ऋ० १-३२-११)

अर्थ—(दासपत्नीः अहिगोपा आपः निरुद्धा अतिष्ठित्) शरण में आये हुओं की रक्षा करने वाली अहि (कुण्डली) रुकी हुई (ठहरी हुई) है।

(पणिना इव गावः) जैसे रक्षक गाओं को रोक रखते हैं।

(यत् अपा बिलम् अपिहितम् आसीत् तत् वृत्रं जघन्वान् अप तत् ववार) जब आपः को बिल में वन्द किया हुआ था तब इन्द्र ने वृत्र को मारा, और आपः बह निकले।

यह कहा है कि वृत्र छादन करने वाली (कुण्डली तमोभूत) आवेशरहित आपः को रोके हुए होती है। जैसे गौओं का रक्षक गौओं को रोके हुए होते हैं। मित्र उन पर प्रहार करता है तो बाधा टूट जाती है। और आवेशरहित आपः बहते हुए बाहर निकल जाते हैं।

इस क्रिया को आधुनिक वैज्ञानिक जान गये हैं और समान रासायनिक गुण वाले आइसोटोप्स अ-समान भार वाले बनाने लगे हैं।

रासायनिक गुण मित्र (इलैक्ट्रोन) और वरुण (प्रोटोन) से बनते हैं। उनमें परिवर्तन के बिना तमः (न्यूट्रोन) निकल जाते हैं। ऐटम का भार इन पर निर्भर करता है। इससे भार में न्यूनता आ जाती है।

आइसोटोप्स समान रासायनिक गुणों वाले परन्तु भिन्न भार वाले परिमण्डलों को कहते हैं—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अगला मन्त्र है—

अश्व्यो वारो अभवस्तदिन्द्र सृके यत्त्वा प्रत्यहन्देव एकः।
अजयो गा अजयः शूर सोममवासृजः सर्त्तवे सप्त सिन्धून्।।

(ऋ० १-३२-१२)

अर्थ—(सृके इन्द्रः देवः एकः यत् त्वा प्रति अहन् तत् अश्वयः वारः अभवः) हे गति में (आए हुए) इन्द्र ! जब एक देव(परमात्मा) ने तुमको चोट पहुँचाई तब तुम अश्व का वारा (तबेला) हो गये।

इसका अभिप्राय यह है कि इन्द्र का यह निर्माण किया हुआ गति करने लगा। जब परमात्मा की अग्नि ने इस पर प्रहार किया तो वह अश्व का वारा (तबेला) बन गया अर्थात् शक्ति-संचय का स्थान हो गया। अश्व शक्ति का सूचक है।

(शूर अजयः गा अजयः सोम सप्त सिन्धून् सर्त्तवे असृजः) तब हे शूर ! (बलवान्) तुम सोम की रश्मियों (धाराओं) को जीत गये और सोम सात धाराओं में बह निकले।

अग्नि और सोम का संयोग हो गया और सोम की धारायें बहने लगीं।

ऐटम बनने के उपरान्त परमात्मा की अग्नि (प्राण-शक्ति) के प्रभाव से, सोम जो ऐटम के मध्य में स्थित है, वह धाराओं में बहने लगा।

इस प्रकार हमने इन्द्र द्वारा संयुक्त परमाणुओं के निबन्धन आपः के अपने पर तीन प्रकार की शक्तियाँ रखने के कारण तथा उनमें परस्पर आकर्षण-विकर्षण के कारण परिमण्डलों के बनने की प्रक्रिया का इस सूक्त में वर्णन किया है।

एटम का परिमण्डल नाम वैशेषिक दर्शन में है। वेद में तो ऐटम को अणु के नाम से ही कहा गया है। अणु दो अथवा दो से अधिक परमाणुओं के संगठन को कहते हैं।

इस परिभाषा से आपः भी अणु ही हैं। परन्तु आपः एक स्थिर प्रकार के संगठन हैं और फिर जगत् के सब पदार्थों का स्रोत हैं। इस कारण उनका वर्णन है। उनके तीन प्रकार के तीन नाम—मित्र, वरुण और अर्यमा (सोम) भी हैं। परन्तु आपः से परिमण्डल के बनने का वर्णन तो है किन्तु इन पदार्थों का पृथक् श्रेणी के रूप में वेद में वर्णन नहीं किया गया है।

वर्तमान विज्ञान में जहाँ आपः का ऐटोमिक पार्टिकल्स के रूप में वर्णन है वहाँ वेद में एटम का पृथक् वर्णन नहीं है। एटम बनने की प्रक्रिया तो ऋ० १-३२ सूक्त में वर्णन की है, परन्तु इनका पृथक् नाम नहीं है। किन्तु एटम(परिमण्डलों)से आगे होने वाले परिवर्तनों का उल्लेख है।

यहाँ वर्तमान विज्ञान और वैदिक विज्ञान में परस्पर व्याख्या में अन्तर आ गया है। परन्तु ऐटम के उपादान बननेवाले पदार्थों का उल्लेख वेद में वैसा ही है जैसा वर्तमान विज्ञान में जगत्-रचना में है। रचना-क्रम इस प्रकार है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परमाणु → महत् (सात वसु) → आपः → मरुत् ।

अतः मरुत् प्रकृति के परिणामों में एक है । ये बहुत संख्या में इकट्ठे दिखाई देते हैं। इस कारण मरुद्-गण कहाते हैं। वैसे तो यह यास्क के प्रमाण से हम बता चुके हैं कि सब देवता प्रकृति की हैं। तदपि इनका इन्द्र से सम्बन्ध तो सन्तान ऋग्वेद में बताया गया है ।

ऋग्वेद के एक सूक्त के कुछ मन्त्र इन्द्र के विषय पर हैं और कुछ मरुत् के विषय पर हैं। और कुछ इन्द्र तथा मरुत् दोनों के विषय पर भी हैं। इससे यही निष्कर्ष निकलता है कि इन्द्र और मरुत् का परस्पर सम्बन्ध है।

उस सूक्त के कुछ मन्त्र हम यहाँ पर उद्धृत कर रहे हैं। उसका प्रथम मन्त्र है—

युञ्जन्ति ब्रध्नमरुषं चरन्तं परि तस्थुषः ।
रोचन्ते रोचना दिवि ।। (ऋ० १-६-१)

इस मन्त्र का देवता इन्द्र है ।

अर्थ—(परितस्थुषः ब्रध्नम् अरुषं युञ्जन्ति । दिवि रोचना रोचन्ते) सब ओर से स्थिर (शान्त स्वभाव वाले) प्रकाशमान से जुड़ते हैं। (तब) अन्तरिक्ष में प्रकाशित हो चमकने लगते हैं।

मन्त्र में कहा है कि सब ओर से स्थिर(यहां साम्यावस्था में परमाणु से अभिप्राय है प्रकाशमान से अभिप्राय है परमात्मा की प्राण-शक्ति) जब ये जुड़ते हैं तो ये परमाणु अन्तरिक्ष में प्रकाशमान हो उठते हैं। अर्थात् परमाणु आवेशयुक्त हो जाते हैं।

यही बात दूसरे ढंग से ऋग्वेद के १-१६३-२ मन्त्र में कही गई है। इस मन्त्र का उल्लेख हम ऊपर के पृष्ठों पर कर आये हैं। इसका अर्थ है कि साम्यावस्था में परमाणु पर जब परमात्मा की अग्नि, जिसे उस मन्त्र में 'अश्वाग्नि' कहा है अर्थात् रचना-कार्य करने वाली ईश्वरीय शक्ति, लगाम की भाँति सवार हो जाती है तो इन्द्र जो पहले भीतर छिपा था प्रकट हो जाता है। इन्द्र त्रिगुणात्मक शक्ति वाला है। वह शक्ति प्रकट हो जाती है।

ऊपर के मन्त्र में इसे परमाणु का प्रकाशमान होना कहा है।

संक्षेप में इस मन्त्र में यह कहा गया है कि जब परमात्मा का प्राण साम्यावस्था में परमाणु से संयुक्त होता है तो परमाणु सजग—आवेशयुक्त—हो जाता है।

सूक्त का दूसरा मन्त्र है—

युञ्जन्त्यस्य काम्या हरी विपक्षसा रथे ।
शोणा धृष्णू नृवाहसा ।। (१-६-२)

अर्थ—(युञ्जन्ति अस्य रथे काम्या हरी विपक्षसा । शोणा धृष्णू नृवाहसा ।) (तब) इसके रथ में कामना करते हुए दो अश्व दोनों पक्षों से प्रकट हो जाते हैं। ये चमकते हुए दृढ़ता से रथ में बैठे को बहा ले जाने वाले हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परमाणु को रथ कहा है। भीतर बैठा हुआ इन्द्र प्रकट होता है तो इसके दो गुण रजस् और सत्त्व रथ के पहलुओं पर प्रकट हो जाते हैं। वे रथ को दो अश्वों की भाँति रथ में दृढ़ता से जोड़े हुए हैं। अश्व कामना करने वाले हैं। आकर्षण-विकर्षण करते हैं और रथ के साथ दृढ़ता से जुड़े हुए रथ में उपस्थित उपादान पदार्थ को रथ के साथ लिये रथ को ले जाते हैं।

इस मन्त्र में यह कहा गया है कि रजस् और तमस् शक्तियाँ बहिःमुख हो रथ को इधर-उधर ले जाती हैं। ये इन्द्र की शक्तियाँ हैं। इन्द्र की तीसरी शक्ति तमस् तो निष्क्रिय होती है। रजस् और सत्व परमाणु के साथ दृढ़ता से जुड़े होते हैं।

यदि इसे चित्रवत् व्यक्त किया जाय तो वह चित्र इस प्रकार बनेगा—

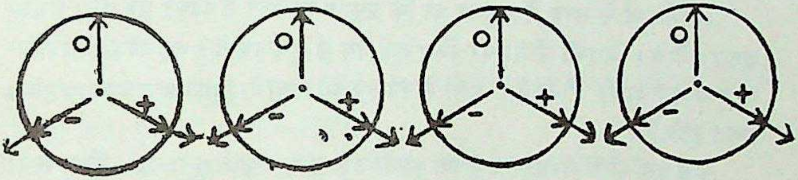

सूक्त का अगला मन्त्र है—

केतुम् कृण्वन्नकेतवे पेशो मर्य्या अपेशसे।
समुषद्भिरजायथाः ।। (ऋ० १-६-३)

इस मन्त्र का देवता भी इन्द्र ही है।

अर्थ—(अकेतवे केतुम् कृण्वन् अपेशसे पेशः। उषद्भिः सम अजायथाः) निष्क्रिय को क्रियाशील करता हुआ (स्थिर को गतिशील करते हुए) अरूपवान् को रूपवान् (करने वाला हो गया)।

रश्मियों द्वारा यह संयोग हुआ।

इस सूक्त के इससे पूर्व के मन्त्र में कहा गया है कि इन्द्र की दो क्रियाशील शक्तियाँ जिन्हें अश्व कहा गया है, परमाणुओं को लेकर इधर-उधर चलने लगीं और उनके संयोग बनाने लगीं। इस प्रक्रिया में परमाणुओं के संयोग (निबन्धन) बने और क्रियाशील हो गये और वे स्वरूपवान् हो गये। अर्थात् असत् से सत्—अव्यक्त से व्यक्त हो गये।

इन मन्त्रों में वही कुछ कहा गया है जो ऋ० १-१६३-३, ४ में वर्णन किया गया है।

व्यक्त जगत् में प्रथम पदार्थ आपः बने। ये आपः थे मित्र, वरुण और सोम। इनके परस्पर संघर्ष का वर्णन हम ऋग्वेद के १-३२ सूक्त में कर चुके हैं।

उस संघर्ष का परिणाम १०४ प्रकार के परिमण्डल (एटम) और आइसोटोप्स

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का बनना है। इसी प्रक्रिया को अस्वरूपवान् से स्वरूपवान्—(अव्यक्त से व्यक्त) होना कहा है।

इसका अभिप्राय यह हुआ कि परिमण्डल स्वरूपवान् हैं।

इसके अगले मन्त्र में कहा गया है—

आदह स्वधामनु पुनर्गर्भत्वमेरिरे।
दधाना नाम यज्ञियम् ॥ (ऋ० १-६-४)

इस मन्त्र का देवता मरुत् हैं।

अर्थ—अब यह निश्चय ही है कि प्रकृति पुनः गर्भस्थिति को प्राप्त होती है। यह यज्ञ करने की योग्यता को धारण करती है।

इसके पूर्व के मन्त्र में बताया था कि प्रकृति अव्यक्त से व्यक्त हुई थी। अर्थात् एटम बने थे। जिनकी सीमा पर मित्र बड़े वेग से घूम रहे थे। यह गति ही स्वरूपवान् बनाने वाली होती है। इसी से स्वरूप और भार (shape and weight) प्रकट होते हैं।

अब इस मन्त्र में बताया है कि इसके उपरान्त प्रकृति पुनः गर्भ की अवस्था में हो जाती है। यहाँ पर "पुनः" से प्रकट होता है कि यह इससे पूर्व भी कभी गर्भावस्था में थी। जब यह साम्यावस्था में थी तब इसकी त्रिगुणात्मक शक्ति, जिसे इन्द्र कहा गया है, वह प्रकृति के परमाणु के भीतर ही छिपी हुई थी। वेद में इसको प्रकृति की प्रथम गर्भावस्था कहा है। दूसरी गर्भावस्था का वर्णन अब इस मन्त्र में किया गया है। अर्थात् ऐटम्स (परिमण्डलों) के संयोग से पुनः शक्ति भीतर छिप जाती है।

इसका अभिप्राय यह है कि परिमण्डल की अवस्था में शक्ति भीतर छिपी हुई नहीं थी।

वर्तमान विज्ञान भी यही मानता है। इसी कारण जब परिमण्डल (एटम) को पदार्थ के रूप में बताना होता है तो वैज्ञानिक दो-दो अथवा अधिक परिमण्डलों के संयोग के रूप में लिखते हैं।

उदाहरण के रूप में हाइड्रोजन का चिह्न H_2O है। जब एक परिमण्डल लिखना होता है तो उस समय H° लिखते हैं। इसमें ऊपर एक बिन्दु दिया जाता है। इसका यह अभिप्राय है कि परिमण्डल का प्रत्येक अणु स्वयं पर एक धन (+) का आवेश रखता है। और जब इसे एक वस्तु के रूप में लिखना होता है तो H_2 लिखा जाता है। अर्थात् दो-दो हाइड्रोजन के परिमण्डल इकट्ठे हैं। जिससे उन पर शेष धन विद्युत् का आवेश संतुलित (neutralized) हो गया है।

इस प्रकार एक आक्सीजन का परिमण्डल O'—लिखा जाता है। और जब आक्सीजन वस्तु लिखनी होती है तो O_2 लिखा जाता है।

इससे यह व्यक्त किया जाता है कि परिमण्डल एक-एक पर या तो धन विद्युत्

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का अथवा ऋण विद्युत् का शेष आवेश (surplus charge) होता है।

परन्तु जब H_2 अथवा O_2 इस प्रकार लिखा जाता है तो परिमण्डल के समूह के रूप से अभिप्राय है।

इसी को प्रकृति की पुनः गर्भावस्था कहा गया है। इससे यह अभिप्राय है कि शक्ति पुनः भीतर छिप गई है।

हाइड्रोजन H_2 में शक्ति का चिह्न नहीं लिखा जाता। इसी प्रकार जब हाइड्रोजन और आक्सीजन संयोग से जल का मरुत् (मोलिक्यूल) बनता है तो H_2O (जल) लिखा जाता है। जल के मरुत् में शेष आवेश नहीं होता। इसका चित्र इस प्रकार लिखा जाता है—

$$H' + O' + H' = H_2O = \begin{matrix} H \\ H \end{matrix} > O$$

आवेश भीतर ही सन्तुलित है।

इस प्रकार हाइड्रोक्लोरिक एसिड (नमक का तेजाब) के अणु को इस प्रकार लिखा जाता है $= H' + CL = HCL$

हीरा कशीश (आयरन सल्फेट) को $H_2\ SO_4$ लिखा जाता है।

इसका संयोग इस प्रकार लिखा जाता है— $\begin{matrix} HO \\ HO \end{matrix} > S \begin{matrix} =O \\ =O \end{matrix}$

अर्थात् सब परिमण्डलों के शेष आवेश (surplus charges) मरुत् के भीतर ही निश्शेष हो गये हैं।

सब आवेश भीतर ही संयुक्त हो गये हैं।

यह है प्रकृति की दूसरी गर्भावस्था अर्थात् एक मरुत् (मालिक्यूल) की गर्भावस्था।

इस अवस्था में यह यज्ञकार्य (रचना-कार्य) सुगमता से करता है।

इसी सूक्त का अगला मन्त्र है—

वीळुचिदारुजत्नुभिर्गुहा चिदिन्द्र वह्निभिः।
अविन्द उस्रिया अनु ।। (ऋ० १-६-५)

इस मन्त्र के देवता मरुत् और इन्द्र।

अर्थ—(चिदिन्द्र गुहः वीढु आरुजत्नुभिः वह्निभिः। अविन्द उस्रिया अनु।) और इन्द्र गुहा में दृढ़ता से बैठा हुआ जब गुहा को फोड़ देता है तो अग्नि धारा में बहती है।

इसका अभिप्राय है कि गुहा में (मरुत् के भीतर) इन्द्र जब उसे फोड़ कर बाहर निकलता है तो यह अग्नि (इन्द्र की शक्ति) धारा में बह निकलती है।

यह 'ड्राई बैटरियों' में होता है। मरुतों के भीतर की शक्ति धारा के रूप में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राप्त की जाती है। अर्थात् रचना-कार्य इस प्रकार प्रगति करता है।

परमाणु (साम्यावस्था में)→परमाणु असाम्यावस्था में→निबन्धन (मित्र, वरुण, अर्यमा (सोम))→परिमण्डल→मरुत्।

इसी सूक्त का एक मन्त्र है—

अतः परिज्मन्नागहि दिवो वा रोचनादधि।
समस्मिन्नृञ्जते गिरः ।। (ऋ० १-६-९)

इस मन्त्र का देवता इन्द्र है।

अर्थ—(अतः परिज्मन् रोचनात् वा दिवः अधि आ गहि) इस प्रकार गति करने वाले (मरुत्) सूर्य अथवा अन्तरिक्ष के नीचे को आते हैं।

(अस्मिन् सम् गिरः ऋञ्जते) इसमें (पृथ्वी पर) जगत् के यज्ञ को सजाते है।

ये मरुत् सूर्य अथवा अन्तरिक्ष में बनते हैं और पृथिवी पर आते हैं। यहाँ से संयुक्त होकर रचना-कार्य को सजाते हैं।

इस प्रकार मरुतों के संग्रह बनने की यहाँ पर बात कही गई है। इन संयोगों को पंच महाभूत कहते हैं।

पंच महाभूत स्थूल जगत् की पाँच अवस्थाओं का नाम है। स्थूल जगत् बना है मरुतों (मोलिक्यूल्स) के संयुक्त होकर ढेले (lumps) बनने से। ये ढेले पाँच प्रकार के माने जाते हैं। इनके नाम हैं—पृथिबी, जल, अग्नि, वायु और आकाश। पृथिवी का अभिप्राय है ठोस पदार्थ (solids)। वास्तव में इस रूप में मरुतों के दलों का नाम पार्थिव होना चाहिये। पृथिवी से अभिप्राय भूगोल से लिया जाता है। यहाँ यह अभिप्राय नहीं है। इस प्रकार जल से अभिप्राय जलीय (तरल पदार्थ) से है अर्थात् बह जाने वाले पदार्थ। वायु से अभिप्राय है वायवीय पदार्थ। मरुतों के ढेलों के ये तीन रूप तो स्पष्ट है ही।

एक रूप अग्नि—आग्नेय (रेडियो ऐक्टिव) कहा है। इनके उदाहरण रेडियम, पोलोयिनम, युरेनियम इत्यादि हैं। इनमें के परिमण्डल स्वतः विघटित हो रहे होते हैं और वह भी एक अनुभव होने वाली गति से। इसके विघटन का वृत्तान्त हम ऋ० १-३२-११ में लिख आये हैं।

वास्तव में विघटित तो इनके परिमण्डल अर्थात् ऐटम हो रहे हैं। परन्तु ये पदार्थ भी ढेलों में मिलते हैं। इस कारण इनको आग्नेय महाभूत कहा है।

वायवीय, जलीय और पार्थिव पदार्थों में अन्तर यह है कि इनके मरुत् (molecules) परस्पर कितनी-कितनी दूरी पर होते हैं।

उदाहरण के रूप में पार्थिव पदार्थों में मरुत् एक-दूसरे के इतने समीप-समीप होते हैं कि अपने में उपस्थित भू-आकर्षण से एक-दूसरे से जुड़े रहते हैं। इसी कारण इनका पार्थिव रूप बना रहता है।

जलीय पदार्थों में मरुत् न तो परस्पर जुड़े होते हैं, न ही इतने दूर-दूर होते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं कि एक-दूसरे को सर्वथा छोड़ दें। जलीय पदार्थों में मरुतों का परस्पर भू-आकर्षण तो होता है परन्तु ढीला होता है। यही कारण है कि जलीय पदार्थ के मरुत् बहते हैं। मरुतों का परस्पर आकर्षण ढीला होने से मरुत् न तो एक-दूसरे को छोड़ते हैं, न ही एक-दूसरे को ऐसे पकड़े होते हैं जैसे पार्थिव पदार्थ में।

वायवीय पदार्थों (gaseus) के मरुत् इतने दूर-दूर होते हैं कि उनका परस्पर सम्बन्ध नहीं होता।

वायवीय पदार्थों को यदि किसी बर्तन में बन्द न किया जाय तो वे दूर-दूर तक चले जाते हैं। वहाँ तक चले जाते हैं जहाँ तक उनको स्थान मिलता है। कहने का अभिप्राय यह है कि वायवीय पदार्थों में मरुत् परस्पर भू-आकर्ष से जुड़े नहीं होते।

पार्थिव, जलीय और वायवीय पदार्थों के मरुतों में कम्पन उत्पन्न हो जाता है। इसको वर्तमान विज्ञान में मारुतीय विकम्पन (मोलिक्यूलर डाइनिमिक्स) कहते हैं। किन्तु यह विकम्पन क्यों उत्पन्न होता है, वर्तमान विज्ञान में इसका कारण ज्ञात नहीं है। वेद में तो कहा है कि जब मरुत् बन जाते हैं तो परमात्मा की अग्नि का इसमें समावेश होने से यह विकम्पन होने लगता है।

कुछ भी हो, यह विकम्पन होता है और तापक्रम में वृद्धि से यह विकम्पन बढ़ जाता है। यही कारण है कि पार्थिवों को गरम करें तो वे तरल हो जाते हैं और तरलों को गरम करें तो वे वायवीय बन जाते हैं। तापक्रम से मरुतों के विकम्पन का आयाम(एम्प्टीट्यूड)बढ़ जाता है और पार्थिव से तरल तथा तरल से वायवीय रूप हो जाता है।

मरुतों के सामान्य गुणों का वर्णन ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के सूक्त ८५ में किया गया है। उसका प्रथम मन्त्र है—

प्र ये शुम्भन्ते जनयो न सप्तयो यामन् रुद्रस्य सूनवः सुदंससः।
रोदसी हि मरुतश्चक्रिरे वृधे मदन्ति वीरा विदथेषु घृष्वयः॥ (ऋ० १-८५-१)

अर्थ—(ये रुद्रस्य सूनवः सुदंससः यामन् प्र शुम्भन्ते जनयः सप्तयः) ये रुद्र (इन्द्रों) के पुत्र (मरुत्) भले काम करने वाले जाते हुए सुन्दर लगते हैं, घूमती हुई स्त्रियों की भाँति।

(हि रोदसी वृधे मरुतः चक्रिरे वीराघृष्वयः मदन्ति विदथेषु) निश्चय से आकाश और पृथिवी पर वृद्धि के लिए कम्पित गति करते हुए मरुत् संघर्ष करते हुए यज्ञ-कार्य (रचना-कार्य) करते हुए प्रसन्न होते हैं।

सूक्त का अगला मन्त्र है—

त उक्षितासो महिमानमाशत दिवि रुद्रासो अधि चक्रिरे सदः।
अर्चन्तो अर्कं जनयन्त इन्द्रियमधि श्रियो दधिरे पृश्निमातरः॥ (ऋ० १-८५-२)

अर्थ—(हे महिमानम् उक्षितासः आशत रुद्रासः दिवि सदः अधि चक्रिरे) वे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महिमावान् वृद्धि को प्राप्त होते हुए इन्द्र के पुत्र (मरुत्) अन्तरिक्ष में स्थित कम्पित गति कर रहे हैं।

(अर्कं अर्चन्तः इन्द्रियं जनयन्तः पृश्निमातरः श्रिया अधि दधिरे) योग्य की पूजा करते हुए बहुत शोभा को धारण करते हैं।

मन्त्र का अभिप्राय यह है कि मरुत् बहुत महिमा वाला कार्य करते हैं। ये बहुत रूपों को उत्पन्न करते हैं और अपने स्थान पर ठहरे हुए कम्पित होते हैं।

चक्रिरे का अर्थ किया जाता है गति करते हैं। हम समझते हैं कि वह गति उत्पन्न करते हैं जो चन्द्र की-सी है। अर्थात् एक केन्द्र स्थान के आसपास गति करना (oscillation)।

मरुतों का एक अन्य गुण जैमिनीय ब्राह्मण में वर्णन किया है। वहाँ कहा गया है—

ततो मरुतो सृजत ईशानमुखान् ॥ (जै० ब्रा० ३-३८१)

अर्थ—मरुत बनते ही ईशान दिशा की ओर मुखकर लेते हैं।

ईशान दिशा है उत्तर पूर्व के मध्य की दिशा। यह चुम्बकीय पदार्थों का गुण है। वर्तमान विज्ञान भी मानता है कि प्रत्येक मरुत् एक चुम्बक होता है।

यहाँ एक बात और बता देना उपयुक्त होगा कि हमने इससे पूर्व ही यह बता दिया है कि पार्थिव, जलीय और वायवीय पदार्थ मरुतों के पिण्ड होते हैं।

इस पर प्रश्न उत्पन्न होता है कि पृथिवी भी पार्थिव आदि मरुतों का पिण्ड है और सूर्य भी मरुतों का पिण्ड है। तदपि दोनों में अन्तर है। सूर्य में क्या विशेषता है। इसका वर्णन भी वेद में किया गया है। ऋग्वेद में इस विषय पर विस्तार से वर्णन है।

वेद में सूर्य के विषय में लिखा है—

चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः।
आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुशश्च ॥

(ऋ० १-११५-१)

इस मन्त्र का देवता सूर्य है।

अर्थ—(मित्रस्य वरुणस्य अग्नेः चक्षुः चित्रं देवानां अनीकं उत अगात्) मित्र वरुण की आंख विचित्र किरण समूह लाती है।

(द्यावा पृथिवी अन्तरिक्षं आ प्रा सूर्यः जगतः तस्थुषः च आत्मा) द्युलोक पृथिवी और अन्तरिक्ष को व्याप्त करती है। सूर्य गतिशील और स्थावर पदार्थों का आत्मा है। उनको गतिशील करता है।

जो बात समझने की है वह यह कि मित्र और वरुण के साथ अग्नि (परमात्मा का प्राण) संयुक्त होता है तो रश्मियों का समूह उत्पन्न हो जाता है। और गतिशील एवं स्थावर पदार्थों को व्याप्त कर प्रकाशित करता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसका अभिप्राय है, पार्थिव आदि पदार्थों में मित्र, वरुण और सोम आदि आपः से बने परिमण्डल और मरुत् होते हैं। परन्तु सूर्य में एक पदार्थ और होता है, वह है अग्नि। अर्थात् परमात्मा के प्राण। इस कारण सूर्य से निकलने वाली रश्मियाँ बनने लगती हैं।

सारांश

पुस्तक के इस प्रथम अध्याय में हमने इन्द्र के अर्थ समझाने का यत्न किया है। इस प्रसंग में हमने बताया है कि—

१. यह प्रकृति का अंग है।

२. प्रकृति की साम्यावस्था में यह परमाणु के भीतर छिपा रहता है।

३. प्रकृति की साम्यावस्था उस समय भंग होती है, जब परमात्मा की अग्नि (प्राण) परमाणु पर लगाम की भांति आरूढ़ हो जाती है।

४. साम्यावस्था भंग होने पर इन्द्र की त्रिगुणात्मक शक्ति बहिर्मुख हो जाती है। इन तीन में दो बलशाली हैं और एक निर्बल। ये शक्ति हैं सत्व, रजस् जो कि बलशाली हैं और तीसरी है तमस् जो शान्त है।

५. बलशाली अश्वों की भाँति परमाणु के साथ दृढ़ता से जुड़ी हुई यह परमाणु को गतिशील करती है। यह गति ही वायु कहाती है।

५. परमाणु गतिशील होते हैं तो इनके संयोग (निबन्धन) बन जाते हैं। ये निबन्धन तीन प्रकार के होते हैं। एक तो वे जिन पर शेष आवेश सत्व (+) धन विद्युत् का होता है। ये वरुण (प्रोटोन) कहाते हैं।

दूसरे वे जिन पर ऋण (—) विद्युत् का आवेश होता है। ये मित्र (इलैक्ट्रोन) कहलाते हैं।

तीसरे वे जिन पर कोई आवेश नहीं होता वे अर्यमा (सोम-न्यूट्रोन) कहाते हैं।

७ विपरीत शक्तियाँ परस्पर आकर्षण करती हैं और समान विकर्षण करती हैं।

८. इस आकर्षण-विकर्षण का परिणाम यह होता है कि अर्यमा (सोम) के चारों ओर धन आवेश वाले वरुण घेरा डाल लेते हैं और ऋण आवेश वाले सीमा पर चक्कर काटने लगते हैं। यह स्वरूप है परिमण्डल (एटम) का।

९. परिमण्डलों पर भी शेष आवेश होता है। कुछ पर ऋण विद्युत् का और कुछ पर धन विद्युत् का। इस कारण वे भी परस्पर संयुक्त होते हैं और मरुत् (मौलिक्यूल) बनते हैं।

१०. मरुत् आवेशरहित होते हैं। इनका पूर्ण आवेश गर्भित हो जाता है। यदि किसी कारण-वश यह गर्भ फूटे तो ऊर्जा धारा में निकलने लगती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

११. मरुतों के पिण्ड बनते हैं। ये पिण्ड पाँच प्रकार के हैं। इन्हें पंच महाभूत कहते हैं। इन पिण्डों में मरुतों की दूरी अथवा समीपता का भेद होता है। तथा मरुतों के परिमण्डलों के स्थायित्व (stability) का भेद होता है।

१२. पृथिवी भी मरुतों का एक पिण्ड है और सूर्य भी मरुतों का पिण्ड है। अन्तर यह है कि सूर्य में मरुतों के साथ परमात्मा की अग्नि का संयोग होता है, तो विशाल रश्मि-समूह उत्पन्न होता है, जिनसे प्रकाश और ऊष्मा उत्पन्न होते हैं।

१३. सूर्य की रश्मियाँ दो प्रकार की मानी जाती हैं। इनको यम और यमी कहते हैं अर्थात् हीट ऐण्ड लाइट।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्वितीय अध्याय

अथर्ववेद में इन्द्र का विषय

इससे पूर्व हम ऋग्वेद में इन्द्र के विषय पर विस्तार से वर्णन कर चुके हैं। ऋग्वेद का मुख्य विषय कल्प है। कल्प का अभिप्राय है—सृष्टि की रचना, पालन और प्रलय। सृष्टि-रचना, पालन और प्रलय इन तीनों में इन्द्र का सहयोग रहा है।

ऋग्वेद २-१२ १, २ में कहा है कि इन्द्र में तोड़-फोड़ करने का सामर्थ्य है, अतः इससे सब डरते हैं।

परमात्मा की अनादि शक्ति जिसे अग्नि—प्राण अथवा अश्वाग्नि कहा गया है, वह रचना-कार्य आरम्भ करती है। उस समय इन्द्र प्रकृति के भीतर छिपा हुआ ही होता है। उस अवस्था में उसकी त्रिगुणात्मक शक्ति परस्पर सन्तुलित हो रही होती है। तब प्रकृति साम्यावस्था में होती है और उसे स्वधा नाम से स्मरण किया जाता है।

एकाएक रचना की कामना से प्राण (परमात्मा की अनादि शक्ति) सजग हो जाती है और वह घोर नाद करती हुई अन्तरिक्ष में फैल जाती है। वहाँ वह परमाणुओं पर लगाम की भाँति आरूढ़ हो जाती है। तब इन्द्र बाहर प्रकट हो जाता है। इसका वर्णन ऋग्वेद १-६-१, २ में किया गया है।

तदनन्तर आपः अर्थात् मित्र, वरुण और सोम बनते हैं। उसके बाद परिमण्डल बनते हैं और फिर मरुत् बनते है। मरुत् में एक शक्ति उत्पन्न होती है जिसे मारुतीय विकम्पन कहा जाता है। उसके कारण मरुद्-गण तीन रूपों में दिखाई देने लगते हैं। ये तीन रूप हैं पृथिवी, जल और वायु। इसके दो अन्य रूप भी हैं। एक आकाशीय और दूसरा आग्नेय। इस प्रकार पाँच रूप होते हैं। इन पांच रूपों को पंच महाभूत कहा है।

इसका विस्तार से वर्णन हम प्रथम प्रध्याय में कर आये हैं। जगत् का पाँच-भौतिक रूप ही वर्तमान अवस्था है। इसी को माण्डूक्य उपनिषद् में जगत् की जागृत अवस्था कहा गया है।

अथर्ववेद में तो इन्द्रका उपयोग मानव जीवन में अथवा मानव क्रियाकलाप

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में कहा है। हमारा इस अध्याय का निष्कर्ष यह है कि वही इन्द्र शक्ति जो प्रकृति के परमाणु में थी और परमाणु के साथ दृढ़ता से जुड़ी हुई है, वह मनुष्य के अनेक अवसरों पर बहुत उपकारी सिद्ध होती है। यह महान् शक्ति है। यदि इसका प्रयोग असावधानी से किया गया अथवा इससे व्यवहार करते हुए स्वभाव का ध्यान न रखा गया तो यह अति भयंकर रूप में हानि भी पहुँचा सकती है।

इस प्रसंग में हम अथर्ववेद के कुछ सूक्तों का अर्थ यहाँ पर प्रस्तुत कर रहे हैं और मानव क्रिया-कलाप में इन्द्र का उपयोग वर्णन कर रहे हैं।

आरम्भ में अथर्ववेद के प्रथम काण्ड के कुछ एक सूक्तों को यहाँ उद्धृत किया जा रहा है। अथर्ववेद के प्रथम काण्ड के द्वितीय सूक्त का देवता अर्थात् विषय इन्द्र है। उसी से हम अपना अध्ययन आरम्भ करते हैं।

सूक्त का प्रथम मन्त्र है—

विद्मा शरस्य पितरं पर्जन्यं भूरिधायसम्।
विद्मो ष्वस्य मातरं पृथिवीं भूरिवर्षसम्।।

(अथर्व १-२-१)

अन्वयार्थ—(शरस्य पितरं पर्जन्यं भूरिधायसम् विद्मः) शर (शस्त्र अथवा वज्र) पालन करने वाले को (उत्पन्न हुओं को पालन करने वाले को) हम भली-भाँति जानते हैं।

क्योंकि सूक्त का देवता इन्द्र है, अतः यह पद इन्द्र का वर्णन कर रहा है। उसका अभिप्राय यह है कि इन्द्र उक्त गुणों वाला है। मानव इसको जानता है, क्योंकि वह नित्य प्रति ऐसा अनुभव करता है।

शर के अर्थ हैं शस्त्र। इन्द्र के शस्त्र अर्थात् इन्द्र के वज्र से अभिप्राय है—मित्र आपः। इसका विस्तृत वर्णन हम ऋग्वेद के प्रकरण में कर आये हैं। मित्र आपः को ही यहाँ पर शर (वज्र) कहा है।

(अस्य मातरम् पृथिवीं भूरि वर्ष सम् विद्माः) उस वज्र की माता पृथिवी (प्रकृति) है। हम जानते हैं कि वह प्रकृति बहुत कुछ देने वाली है।

यहाँ पृथिवी का अभिप्राय प्रकृति से है। प्रकृति पूर्ण संसार के पदार्थों को देती है। इस मन्त्र का विषय इन्द्र है। इन्द्र प्रकृति की उपज है। इन्द्र का वज्र भी प्रकृति का ही बना हुआ है। इसे मित्र कहा है। ऋग्वेद १-१३६-२ में मित्र को प्रकृति की अन्यतम सन्तान कहा गया है।

इस सूक्त का अगला मन्त्र इस प्रकार है—

ज्याके परि णो नमाश्मानं तन्वं कृधि।
वीडुर्वरीयोऽरातीरप द्वेषांस्या कृधि।।

(अथर्व १-२-२)

अन्वयार्थ—(ज्या परि णो तन्वं नः अश्मानं कृधि) हे ज्या! (जीतने वाले

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थात् इन्द्र) सब प्रकार से झुक जाओ। हमारे शरीरों को पत्थर की भाँति सुदृढ़ कर दो।

झुक जाओ से यहाँ पर अभिप्राय है कि हमारी ओर पृथिवी पर आओ। यदि इसको 'नः परिनम्' के साथ पढ़ा जाय तो उस अवस्था में इसका अर्थ होगा— हे विजयी इन्द्र! सब प्रकार से अपने शरीर को झुका दो। और(उसे ही) पत्थर की भाँति सुदृढ़ कर दो।

हम समझते हैं कि इस मन्त्र के प्रथम अर्थ ही उपयुक्त हैं। यदि झुक जाओ के अर्थ—हे इन्द्र! पृथिवी की ओर आओ—किये जायँ तो हमारे शरीरों को पत्थर कर दो, यह अर्थ अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है।

(त्वं वरीयः वीडु अरातीः द्वेषांसि मा अप कृधि) तुम शत्रुओं को तथा द्वेष करने वालों को, पराजित करो।

मन्त्र की दूसरी पंक्ति पढ़ने से भी यही ठीक प्रतीत होता है कि प्रथम पंक्ति में हमारे शरीर को पत्थर की भाँति करने के लिए कहा गया है।

सूक्त का अगला मन्त्र है—

वृक्षं यद् गावः परिषस्वजाना अनुस्फुरं शरमर्चन्त्यृभुम्।
शरुमस्मद् यावय दिद्युमिन्द्र ॥ (अथर्व० १-२-३)

अन्वयार्थ—(यत गावः परिषस्वजानाः वृक्षं अनुस्फुरं शरम् अर्चन्ति ऋभुम्) जब रश्मियाँ चारों ओर से परमाणु से लिपटी हुई, उसे स्फुरित करती हुई (गतिशील करती हुई) विद्युत्-युक्त करती हैं, तब वज्र की पूजा होने लगती है। वज्र का कार्य आरम्भ हो जाता है। ऋभुं का अर्थ है—व्यापक ज्योति वाला। अर्थात् परमाणु विद्युत् से युक्त हो जाता है।

इस प्रसंग में ऋग्वेद १-६-२ भी द्रष्टव्य है।

अगला मन्त्र है—

यथा द्यां च पृथिवीं चान्तस्तिष्ठति तेजनम्।
एवा रोगं चास्रावं चान्तस्तिष्ठतु मुञ्ज इत् ॥
(अथर्व० १-२-४)

अन्वयार्थ—(यथा द्यां पृथिवीं च अन्तः तेजनम् तिष्ठति) जैसे सूर्य लोक और पृथिवी के भीतर प्रकाश ठहरता है।

(एव च अस्रावं अरोगं च अन्तः मुञ्ज तिष्ठिति) और इसी प्रकार अस्राव (विसूचिका अथवा बहुमूत्र) रोगों में और निरोगिता के मध्य शुद्धि (शरीर शुद्धि) ठहरी होती है।

यहाँ शुद्धि से अभिप्राय शरीर शुद्धि से है। व्यर्थ का मल शरीर से निकाल देना चाहिए। प्रायः रोगों में शरीर-शुद्धि, मल, मूत्र, श्लेष्मा इत्यादि को शरीर से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निस्सारण करने को कहा जाता है।

जीर्ण रोगों को शरीर से निकालने के लिए शरीर की शुद्धि की जाती है।

अथर्ववेद का चतुर्थ सूक्त

अथर्ववेद के प्रथम काण्ड का चतुर्थ सूक्त भी इन्द्र के विषय पर ही है। इसका देवता इन्द्र है। इस सूक्त का प्रथम मन्त्र है—

अम्बयो यन्त्यध्वभिर्जामयो अध्वरीयताम्।
पृथ्वीर्मधुना पयः॥ (अथर्व० १-४-१)

अन्वयार्थ—(अम्बयः जामयः अध्वभिः अध्वरीयताम् यन्ति) यज्ञ करने वालों की मातायें और बहनें मार्ग द्वारा जाती हैं। (नियमानुसार व्यवहार करती हैं।)

(पृथ्वीः मधुना पयः) पिलाती हैं मधु से दूध।

इस मन्त्र में कहा गया है कि धर्म-कर्म, (यज्ञ) करने वालों का स्त्रीवर्ग अपने व्यवहार को नियमानुसार रखता है। इससे वह दूध और मधु को मिलाती है। अभिप्राय यह है कि वे सुख देने वाली होती हैं। यह सुख भी इन्द्र के सामर्थ्य का परिणाम है।

दूसरा मन्त्र है—

अमूर्या उप सूर्ये याभिर्वा सूर्यः सह।
ता नो हिन्वन्त्वध्वरम्॥ (अथर्व० १-४-२)

अन्वयार्थ—(अमूः या उप सूर्ये वा याभिः सूर्यः सह) यह जो ऊपर के मन्त्र में नियमानुसार व्यवहार रखने वाली स्त्रियाँ कहा है, सूर्य (ऐश्वर्ययुक्त पति अथवा ऐश्वर्यवान्) के सहयोग से—

(ताः नः अध्वरम् हिन्वन्तु) वे हमारे यज्ञ को बढ़ावें (मानवसृष्टि करें)।

इस मन्त्र में सूर्य का अर्थ हमने ऐश्वर्यवान् पति किया है। ऋग्वेद में भी ऐसा प्रयोग हुआ है। रचना-यज्ञ का अभिप्राय है सन्तान उत्पन्न करना।

इस सूक्त का देवता इन्द्र है। इसका अभिप्राय यह हुआ कि इन्द्र के सहयोग से स्त्रियाँ यह रचना-कार्य करती हैं। दूसरे शब्दों में यदि कहा जाय तो यह कि स्त्रियों से सहवास का सुख इन्द्र की शक्ति का ही फल है।

अगला मन्त्र है—

अपो देवीरुप ह्वये यत्र गावः पिबन्ति नः।
सिन्धुभ्यः कर्त्वं हवि॥ (अथर्व० १-४-३)

अन्वयार्थ—(देवी अपः उप ह्वये यत्र नः गावः पिबन्ति) दिव्य आपः हमारे समीप आवे, जहाँ हमारी इन्द्रियाँ (आनन्द का) पान करती हैं।

(सिन्धुभ्यः कर्त्वं हविः) धाराओं में (हम) हवि (यज्ञ में आहुति) करते हैं।

मन्त्र का भावार्थ यह है कि आपः सूर्य से पृथिवी पर धाराओं में आ रहे हैं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पृथिवी पर वनस्पतियों में समा जाते हैं। वनस्पतियाँ मनुष्य द्वारा भोजन में ग्रहण की जाती हैं। इससे मनुष्य में शक्ति प्राप्त होती है। ये आपः मनुष्य की सामर्थ्य बढ़ावें। यह सामर्थ्य ही पुरुष-स्त्री के संयोग में कार्य करती हैं।

Central Library 167983 Gurukula Kangri (Deemed to be University) Haridwar

अगला मन्त्र है—

अप्स्वन्तरमृतमप्सु भेषजम्।
अपामुत प्रशस्तिभिरश्वा भवथ वाजिनो
गावो भवथ वाजिनीः॥ (अथर्व० १-४ ४)

अन्वयार्थ—(अप्सु अन्तः अमृतं अप्सु भेषजम्) अपाओं के बीच में अमृत है (जीवन का सामर्थ्य है) अपाओं के भीतर रोग निवारक गुण हैं।

(अश्वाः उत अपां प्रशस्तिभिः वाजिनीः भवथ) और अश्वी आपः (कार्य करने में बलवान आपः) के द्वारा की शक्ति से (उनके सहाय से) बलशाली होओ।

अश्व का अर्थ उस शक्ति से है जो रचना-कार्य को चलाये, जिस प्रकार घोड़ा गाड़ी को चलाता है।

(गावः वाजिनीः भवथ) इन्द्रियाँ शक्तिशाली होवें।

इस सूक्त में आपः के जनन-क्रिया में सहायक होने की बांत कही है। आपः परमाणुओं के निवन्धन (संयोग) हैं जिन पर इन्द्र की त्रिगुणात्मक शक्ति रहती है। ये आपः द्युलोक तथा अन्तरिक्ष में बनते हैं। ऋग्वेद १-१६३-३, ४ में भी इसका उल्लेख किया गया है। सूर्य की किरणों के रूप में पृथिवी पर आते हैं। वनस्पतियों में समा जाते हैं। वनस्पतियों के सेवन से मनुष्यों में सामर्थ्य आती है। इन्द्र की सामर्थ्य से ऋतु-धर्म में लीन स्त्री-वर्ग रचना-कार्य अर्थात् सन्तानोपत्ति करती है।

सूर्य पति को कहा गया है। यह उसके ऐश्वर्यवान् होने के कारण है। उनके सहयोग से स्त्रियाँ रचना-कार्य (सन्तानोपत्ति) करती हैं। यह सामर्थ्य आपः से ही प्राप्त होती है। आपः पर इन्द्र की शक्ति होती है।

पंचम सूक्त

अथर्ववेद के पंचम सूक्त का देवता आपः है।

प्रथम मन्त्र है—

आपो हि ष्ठा मयोभुवस्ता न ऊर्जे दधातन।
महे रणाय चक्षसे॥ (अथर्व० १-५-१)

अन्वयार्थ—(आपः हि मयो भुवःस्ता) निश्चय से हे आपः तुम सुखकारक हो।

(ऊर्जे नः दधातन) हमें ऊर्जा में स्थापित करो।

(महे रणाय चक्षसे) महान् संघर्ष को देखने के लिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यहाँ पर संघर्ष को देखने से अभिप्राय है जीवनयापन के प्रयास में सफल होने के लिए।

इस प्रकार मन्त्र का अर्थ होगा—आपः हमारे शरीर में शक्ति दे जिससे हम जीवनयापन के लिए सफलता पूर्वकसंघर्ष चला सकें।

अगला मन्त्र है—

यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः।
उशतीरिव मातरः॥ (अथर्व० १-५-२)

अन्वयार्थ—(यः वः शिवतमः रसः तस्य नः इह भाजयत्) जो तुम्हारे अत्यन्त कल्याणकारी रस है (प्रभाव है) यहाँ हमको उसका भाग दिखाओ।

(उशतीः इव मातरः) चाहती हुई माताओं की भाँति।

आपः को प्राप्त करने की इच्छा की गई है। वेद में इच्छा अथवा याचना का अर्थ है उसके लिए यत्न करना। उसके लिए इच्छा अथवा याचित पदार्थ को प्राप्त करने का यत्न करे। आपः को प्राप्त करने के लिए कहा गया है।

ऊपर बताया जा चुका है कि आपः द्युलोक अथवा अन्तरिक्ष में बनते हैं और वहाँ से वनस्पतियों में आते हैं। वनस्पतियों, फलों और अन्न आदि को खाने से मनुष्य शरीर में जाते हैं। यह मार्ग है आपः प्राप्त करने का। इसी प्रकार प्राप्त करने की प्रेरणा मन्त्र में की गई है।

अगला मन्त्र है—

तस्मा अरं गमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथा
आपो जनयथा च नः॥ (अथर्व० १-५-३)

अन्वयार्थ—(यस्य क्षयाय वः जिन्वथ तस्मा अरं गमाम) जिसकी प्राप्ति के लिए तुम अनुग्रह करते हो उसको हम प्राप्त करें।

(च नः आपः जनयथा) और हे आपः! हमारे लिये उत्पन्न करो।

आपः शरीर में पुष्टिकारक रस उत्पन्न करते हैं। यही भाव यहाँ पर है।

अगला मन्त्र—

ईशाना वार्याणां क्षयन्तीश्चर्षणीनाम्।
अपो याचामि भेषजम्॥ (अथर्व १-५-४)

अन्वयार्थ—(वार्याणाम् चर्षणीनाम् ईशानाः क्षयन्तीः आप याचामि भेषजम्) वरने योग्य मनुष्यों पर शासन करने वाली औषधि रूप आपः की मैं याचना करता हूँ।

आपः औषधि के रूप में मनुष्यों पर प्रभाव करती हैं। इस कारण इस मन्त्र में उनके लिए याचना की गई है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

षष्ठ सूक्त

इस सूक्त का देवता भी आपः है।

शं नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये।
शं योरभि स्रवन्तु नः॥ (अथर्व० १-६-१)

अन्वयार्थ—(देवीः आपः नः अभिष्टये पीतये शं भवन्तु) दिव्य आप हमारी इष्ट-सिद्धि के लिए और ग्रहण करने के लिए कल्याणकारी हों।

'पीतये' के शाब्दिक अर्थ हैं पीने के लिए। पिया हुआ पदार्थ आत्मसात् किया जाता है। 'आपः पीतये' का अर्थ हमने 'ग्रहण करने के लिए' किया है। मन्त्र का अभिप्राय यह है कि ग्रहण किये हुए आपः हमारा कल्याण करते हैं।

आपः ग्रहण करने की रीति का वर्णन इससे पहले किया जा चुका है। आपः का अभिप्राय जल से नहीं है, अपितु परमाणुओं के निबन्धन होते हैं। वर्तमान विज्ञान में इनको एटोमिक पार्टिकल्स कहा जाता है।

अगला मन्त्र है—

अप्सु मे सोमो अब्रवीदन्तर्विश्वानि भेषजा।
अग्निं च विश्वशंभुवम्॥ (अथर्व० १-६-२)

अन्वयार्थ—(सोमः मे अब्रवीत अप्सु अन्तःविश्वानि भेषजा) सोम आपः ने मुझको बताया है कि आपाओं के मध्य में रोग निवारक गुण है।

(च अग्निं विश्व शम्भुवम्) और विश्व की कल्याण करने वाली अग्नि को (भी बताया है।)

सूक्त का अगला मन्त्र है—

आपः पृणीत भेषजं वरूथं तन्वे ३ मम।
ज्योक् च सूर्यं दृशे॥ (अथर्व० १-६-३)

अन्वयार्थ—(आपः मम तन्वे वरूथं भेषजं पृणीत) हे आपः! मेरे शरीर के लिए रक्षक औषधियाँ भर दो।

(च सूर्यं ज्योक् दृशे) और सूर्य के देखने के लिए(लम्बी आयु का) भोग करूँ।

अगला मन्त्र है—

शं न आपो धिन्वन्या ३ः शमु सन्त्वनूप्याः।
शं नः खनित्रिमा आपः शमु या कुम्भ आभृताः
शिवा नः सन्तु वार्षिकीः॥ (अथर्व० १-६-४)

अन्वयार्थ—(नः शं धन्वन्याः अनअनूप्याः आपः शं सन्तु) हमारे लिये शान्त मरुभूमि (आवेश-रहित आपः) गीले (आवेश-युक्त आपः) कल्याणकारी होवें।

(याः कुम्भे आभृतः खनित्रिमा शिवाः नः वार्षिकीः सन्तु)जो कुम्भ में भरे हुए खोदकर निकाले हुए हैं, वे वर्षा की भाँति बहुत मात्रा में हमें प्राप्त हों।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राप्त होकर उनका उपयोग क्या हो ? शरीर को पुष्ट करना। सन्तान उत्पत्ति में सहायक होना और जीवन को सुदीर्घ करना।

शान्त स्वभाव आपः अर्यमा अर्थात् सोम को पुष्टिकारक, रोगनाशक माना है। भोग्य पदार्थों में इन सोमों का बाहुल्य होता है। खाने योग्य पथार्थों के मरुतों (मौलिक्यूल्स) में मित्र, वरुण तो बहुत कम संख्या में और बहुत कम द्रव्यमान में होते हैं। परन्तु सोम आपः की संख्या और द्रव्यमान बहुत अधिक होता है। ये आवेशरहित आपः भोज्य पदार्थों का मुख्य भाग होते हैं।

आयुर्वेद के सिद्धान्त के अनुसार ये श्लेष्मा उत्पन्न करते हैं। यदि श्लेष्मा यथोचित मात्रा में उत्पन्न हो तो वह शरीर के पुष्ट होने में सहायक होती है।

इस सूक्त में जिस अग्नि का उल्लेख आया है उसका अभिप्राय उस अग्नि से नहीं है जो सृष्टि-रचना को आरम्भ करती है। यह अग्नि इन्द्र की सन्तान है। धन और ऋण विद्युत् के संयोग से उत्पन्न ऊष्मा ही यह अग्नि है। इसे रासायनिक शक्ति भी कहते हैं। यह लकड़ी इत्यादि के जलने से उत्पन्न होती है। इसे ही जातवेदा कहा जाता है। इस सूक्त में इसी जातवेदा अग्नि की स्तुति की गई है।

अथर्ववेद सप्तम सूक्त

सूक्त का प्रथम मन्त्र है—

स्तुवानमग्न आ वह यातुधानं किमीदिनम्।
त्वं हि देव वन्दितो हन्ता दस्योर्बभूविथ ।।

(अथर्व १-७-१)

इस सूक्त का देवता इन्द्राग्नौ हैं।

अन्वयार्थ—(अग्नेस्तुवानं यातुधानं किमीदिनम् आ वह) हे अग्ने! स्तुति करते हुए यातुधान और किमीदि को ले आओ।

(त्वं हि देव वन्दितः दस्योः हन्तः बभूविथ) हे देव! वन्दना किये हुए तुम ही दस्युओं को मारने में समर्थ हो।

इस सूक्त में 'यातुधान और किमीदि' शब्द बहुत बार आये हैं। भाष्यकारों ने इन शब्दों के अर्थ भी उसी प्रकार अनेक-विधि किये हैं। कुछ ने तो यातु का अर्थ जादू करने वाला किया है। हमारे मत में यातु का अर्थ कष्ट देने वाला और धानं का अर्थ जिसमें आधारित हो अर्थात् कष्ट देने वाला जिसमें विद्यमान हो, जैसे कि डंक।

इसी प्रकार किमीदिनं का अर्थ भी अनेक भाँति किया गया है। एक स्थान पर तो इसका अर्थ किया गया है 'यह क्या और वह क्या'। हमारी दृष्टि में इसका अर्थ 'कीट पतंगे' होना चाहिए।

इस आधार पर अर्थात् हमारे मत से इस मन्त्र का अर्थ होगा—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हे अग्नि ! तुम स्तुति योग्य हो । तुम कष्टदायक इन कीड़े-मकौड़ों को अपनी ओर खींच लो ।

आवह का अर्थ है--ले जाओ । इसी प्रकार दस्यु का अर्थ है—कष्टकारक, कीटाणु अथवा कीट-पतंगे ।

अगला मन्त्र है—

आज्यस्य परमेष्ठिन् जातवेदस्तनू वशिन् ।
अग्ने तौलस्य प्राशान यातुधानान् वि लापय ।।

(अथर्व० १-७-२)

अन्वयार्थ—-परमेष्ठिन् तनू वशिन् जातवेद: तौलस्य आज्यस्य प्र अशान)परम प्रतिष्ठित शरीर को वश में रखने वाले जातवेद: तुले हुए निश्चित मात्रा में, घी का भली प्रकार भोग कर। कष्ट देने वालों को विलाप करा।

जातवेद: का अर्थ है—वह जो उत्पन्न होते ही जाना जाय अर्थात् देखा जाय। जैसा कि हम कह आये हैं कि यह अग्नि इन्द्र की सन्तान है जो लकड़ी आदि के जलने से अथवा घी आदि के जलने से उत्पन्न होती है।

इस कथन से यह स्पष्ट हो गया है कि इस सूक्त में अग्नि से अभिप्राय इन्द्र से उत्पन्न अग्नि है। यही घी के पड़ने से भड़क उठती है।

सूक्त का अगला मन्त्र है--

वि लपन्तु यातुधाना अत्त्रिणो ये किमीदिन: ।
अथेदमग्ने नो हविरिन्द्रश्च प्रति हर्यतम् ।।

(अथर्व० १-७-३)

अन्वयार्थ—(वि लपन्तु अत्रिण: किमीदिन:) जो बहुत खाने वाले और कष्ट देने वाले कीट-पतंग हैं, वे विलाप करें।

(अग्नि: इन्द्र न: अथ इदं हवि प्रतिहर्यतम्) और हे अग्नि ! इन्द्र हमारी इस हवि को स्वीकार करें।

सूक्त का अगला मन्त्र है—

अग्नि: पूर्व आ रभतां प्रेन्द्रो नुदतु बाहुमान् ।
ब्रवीतु सर्वो यातुमानयमस्मीत्येत्य ।।

(अथर्व० १-७-४)

अन्वयार्थ—(पूर्व: अग्नि: आ रभतां प्र बाहुमात् इन्द्र नुदतु) पहले अग्नि आरम्भ हो (प्रज्वलित हो) तब प्रबल भुजाओं वाला इन्द्र (यातुधान और किमीदिन् को) धकेल देवे। अग्नि में ला पटके।

(सर्वा: यातुमान् एत्य ब्रवीतु अयमस्मि) जब सब यातना देने वाले आकर कहें—मैं आया हूँ।

इस मन्त्र का अभिप्राय यह है कि जब अग्नि प्रज्वलित होती है तो इन्द्र की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बलवान् रश्मियाँ सत्व और रजस् इन मच्छर मकोड़ों को आकर्षित करती हैं और वे मच्छर कीट-पतंगे स्वेच्छा से भूं-भूं करते हुए अग्नि में आ गिरते हैं और भस्म हो जाते हैं।

सूक्त का अगला मन्त्र है—

पश्याम ते वीर्यंजातवेदः प्र णो ब्रूहि यातुधानान् नृचक्षः।
त्वया सर्वे परितप्ताः पुरस्तात् त आ यन्तु प्रब्रुवाणा उपेदम्॥

(अथर्व० १-७-५)

अन्वयार्थ—(जातवेदः ते वीर्यम् पश्याम नृचक्षः यातुधानान् नः प्रब्रूहि) हे जातवेदः! हम तेरे बल को देखें (प्रयोग करें)। हे मनुष्यों पर दृष्टि रखने वाले हमें कष्टदायक कीट-पतंगों को भली प्रकार बता दो (उनसे रक्षा करो)।

(त्वया सर्वे परितप्ताः प्रब्रुवाणा आ उपेदम्)तुम से सब जलाये हुए समक्ष आ कर यह कहें—

(पुरस्तात् त आ यन्तु) हम आ गये हैं।

सूक्त का अगला मन्त्र कहता है—

आ रभस्व जातवेदो ऽस्माकार्थाय जज्ञिषे।
दूतो नो अग्ने भूत्वा यातुधानान् वि लापय॥

(अथर्व० १-७-६)

अन्वयार्थ—(जातवेदः अस्माक अर्थाय जज्ञिये) हे जातवेदः! तू हमारे हित के लिए उत्पन्न हुआ है।

(अग्नेः नः दूतः भूत्वा अस्मान् आ रभस्व यातुधानान् वि लापय)हे जातवेद! अग्ने! यातुधान को विलाप कराओ।

विलाप कराओ का अर्थ है कि वे अग्नि की ओर आकर्षित होकर प्रसन्न होते हुए आये थे परन्तु सब झुलसने लगे तो पश्चात्ताप करने लगे।

सूक्त का अगला मन्त्र इस प्रकार है—

त्वमग्ने यातुधानानुप बद्धां इहा वह।
अथैषामिन्द्रो वज्रेणापि शीर्षाणि वृश्चतु॥(अथर्व० १-७-७)

अन्वयार्थ—(त्वम् उप बद्धान् यातुधानान् इह आ वह)हे अग्ने! इन बँधे हुओं को, कष्ट देने वालों को इधर ले आओ।

(अथ एषां शीर्षाणि इन्द्र अपि वज्रेण वृश्चतु) और हे इन्द्र! इनके सिरों को वज्र से काट दो।

इन मन्त्रों में जातवेदः अग्नि का वर्णन किया गया है। यह अग्नि इन्द्र की सन्तान है।

लकड़ी घी इत्यादि के जलने से जो अग्नि प्रकट होती है वह वर्तमान विज्ञान में रासायनिक शक्ति कही जाती है। यह रासायनिक शक्ति आपः(एटोमिक पार्टि-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कल्स)या आवेशों के संघर्ष से उत्पन्न होती है। यही कारण है कि हम इसे इन्द्र की शक्ति कहते हैं।

अथर्ववेद के प्रथम काण्ड में इन्द्र के विषय पर एक अन्य सूक्त भी है। यह सूक्त है इक्कीसवां। हम उसे यहाँ उद्धृत कर रहे हैं।

अथर्ववेद प्रथम काण्ड, एकविंशति सूक्त

इस सूक्त का प्रथम मन्त्र है—

स्वस्तिदा विशां पतिर्वृत्रहा विमृधो वशी।
वृषेन्द्रः पुर एतु नः सोमपा अभयंकरः॥

(अथर्व० १-२१-१)

अन्वयार्थ—(स्वस्ति दा विशां पतिः वृत्रहा विमृधः वशी)कल्याण करने वाला (प्रजाओं का पालन करने वाला), वृत्रों को ढांप लेने वाले अर्थात् अधिकार जमा लेने वालों का नाश करने वाला, शत्रुओं को वश में करने वाला (तू है)।

(सोमपा अभयंकरः विषः इन्द्र नः पुरः एतु) सोम पिया हुआ, अभयदान करने वाला बलवान् इन्द्र हमारे आगे-आगे चले।

अर्थात् हमारे कामों में इसका भरपूर प्रयोग हो।

सोम पिये हुए का अर्थ है कि सोम आपः से युक्त मित्र।

सूक्त का अगला मन्त्र है—

वि न इन्द्र मृधो जहि नीचा यच्छ पृतन्यतः।
अधमं गमया तमो यो अस्मां अभिदासति॥

(अथर्व० १-२१-२)

अन्वयार्थ—(इन्द्र नः मृधः वि जहि। पृतन्यतः नीचा यच्छ) हे इन्द्र! हमारे शत्रुओं को मार डाल। संगठित प्रहार करने वालों को नीचे ले जा (पराजित कर दे)।

(यः अस्मान् अभिदासति अधमं तमः गमया)जो हमको दास बनाना चाहते हैं उन अधर्मों को अन्धकार में ले जा।

वेद की यह शैली है कि जब परमात्मा तथा सत्ता से किसी प्रकार की याचना की जाती है तो उसका अभिप्राय होता है कि परमात्मा तथा देवता को स्मरण कर स्वयं वह कामना पूर्ण करने का यत्न किया जाय।

सूक्त का अगला मन्त्र इस प्रकार है—

वि रक्षो वि मृधो जहि वि वृत्रस्य हनू रुज।
वि मन्युमिन्द्र वृत्रहन्म मित्रस्याभिदासतः॥

(अथर्व० १-२१-३)

अन्वयार्थ—(वि रक्षः मृधः जहि वित्रस्य हनूः वि रूज)दुष्ट राक्षस(हिंसक)को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विशेष रूप से मार डाल।

(वृत्रहन् इन्द्र अभिदासतः अमित्रस्य मन्युम्) वृत्र (वरुणों को मारने वाले इन्द्र) दास बनाने वाले मन्यु (क्रोध) को भंग कर दे।

इन मन्त्रों को यहाँ उद्धृत करते हुए हम यह बताने का यत्न कर रहे हैं कि इन मन्त्रों में भी इन्द्र से अभिप्राय प्रकृति की त्रिगुणात्मक शक्ति ही है।

सूक्त का अगला मन्त्र है—

अपेन्द्र द्विषतो मनोऽप जिज्यासतो वधम्।
वि महच्छर्म यच्छ वरीयो यावया वधम्॥

(अथर्व० १-२१-४)

अन्वयार्थ—(इन्द्र द्विषतः जिज्यासतः मनः अप वधम्) हे इन्द्र! द्वेष करने वाले, आयु को हानि पहुँचाने वाले के मन को तथा बल प्रयोग करने वाले की उच्छृंखलता को दूर कर दो।

(वि महत् शर्म वधत् वरीयो यावया यच्छ) महान् निर्विघ्न आश्रय स्थान से वध करने वाले शस्त्र को दूर फेंक दे।

कदाचित् विरोधी विद्युत् शक्ति से ऐसा करने के लिए कहा गया है। ऋण विद्युत् धन विद्युत् को दूर फेंक देती है।

अथर्ववेद द्वितीय काण्ड, एक त्रिंशति सूक्त

अब हम यहाँ पर अथर्ववेद के द्वितीय काण्ड के इकत्तीसवें सूक्त को उद्धृत कर रहे हैं। क्योंकि उन मन्त्रों में भी इन्द्र के विषय में वही कुछ कहा गया है जो कि ऋग्वेद में कहा गया था।

इकत्तीसवें सूक्त का प्रथम मन्त्र है—

इन्द्रस्य या मही दृषत् क्रिमेर्विश्वस्य तर्हणी।
तया पिनष्मि सं क्रिमीन् दृषदा खल्वाँ इव॥

(अथर्व० २-३१-१)

अन्वयार्थ—(या इन्द्रस्य महि दृषत् विश्वस्य क्रिमे तर्हणि) जो इन्द्र की महान् सुदृढ़ शिलायें हैं वे संसार भर की कृतियों का नाश करने वाली हैं।

(तया दृषदा क्रिमीन् सम पिनष्मि च खल्वान् इव) उस शिला से कृमि समान रूप में पिस जाते हैं जैसे कि चक्की में चने पिस जाते हैं।

अगला मन्त्र है—

दृष्टमदृष्टमतृहमथो कुरूरुमतृहम्।
अल्गण्डून्त्सर्वाञ्छलुनान् क्रिमीन् वचसा जम्भयामसि॥

(अथर्व० २-३१-२)

अन्वयार्थ—(दष्टम् अदृष्टम् कुरुरुम् अतृहम्) दिखाई देने वाले न दिखाई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देने वाले भूमि पर रेंगने वाले मैंने मार डाले हैं।

(सर्वान् अलगण्डून् शलुनान् क्रिमीन् वचसा जम्भयाम् असि)सब गद्दों में कृमि (पिस्सु) रेंगकर चलने वाले कृमि मार डाले जायें।

सूक्त का अगला मन्त्र है—

अलगण्डून् हन्मि महता वधेन दूना अदूना अरसा अभूवन्।
शिष्टानशिष्टान् नि तिरामि वाचा यथा क्रिमीणां न किरुच्छिषातै॥

(अथर्व० २-३१-३)

अन्वयार्थ—(अलगंडून् महता वधेन हन्मि दूना अदूनाः अरसः अभूवन्)पिसुओं का महान् वध करने वाली (औषधि) से मारता हूँ। पके हुए (पुष्ट) न पके हुए (अपुष्ट) कृमि निरस (निष्प्राण) हो जायँ।

(शिष्टान् अशिष्टान् नि ति रभि। यथा वाचा क्रिमीणाम् न किः उत् शिषातै) शास्त्र में वर्णित अथवा अवर्णित को निश्चय से मार डाला है। कृमियों में कोई नहीं बचे।

इन्द्र परमाणु के अन्तर्गत त्रिगुणात्मक शक्ति है। यहाँ पर कृमि नाश करने में उसके प्रयोग की बात कही गई है।

अगला मन्त्र है—

अन्वान्त्र्यं शीर्षण्य मथो पार्ष्टेयं क्रिमीन्।
अवस्कवं व्यध्वरं क्रिमीन् वचसा जम्भयामसि॥

(अथर्व० २-३१-४)

अन्वयार्थ—(अन्वान्त्र्यं शीर्षम् अथः पार्ष्टेय क्रिमीन्) आँतों में पड़ने वाले कीड़े, सिर में पड़ने वाले कीड़े और पीठ में पड़ने वाला कृमि।

(अवस्कवं व्यध्वरं क्रिमीन् वचसा जम्भयाम् असि) त्वचा के नीचे घुसने वाले कृमि (दाद खुजली आदि के) वाणी (ज्ञान) से हम नष्ट करें।

सूक्त का अगला मन्त्र—

ये क्रिमयः पर्वतेषु वनेषु ओषधीषु पशुष्वप्स्वन्तः।
ये अस्माकं तन्वमाविविशुः सर्वं तद्धन्मि जनिम क्रिमीणाम्॥

(अथर्व० २-३१-५)

अन्वयार्थ—(ये पर्वतेषु वनेषु औषधीषु पशुषु क्रिमयः अप्सु अन्तः)जो पर्वतों में वनों में औषधियों में, पशुओं में और जल के भीतर है,

(ये अस्माकं तन्वं आविविशुः तत् सर्वं क्रिमीणाम् जनिम)जो हमारे शरीर में घुस गये हैं उन सब क्रिमियों के जन्म का नाश हो।

इसका अभिप्राय भी यह है कि उन क्रिमियों को उत्पन्न ही न होने दिया जाय।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथर्ववेद तृतीय काण्ड, प्रथम सूक्त

अथर्ववेद के तृतीय काण्ड के प्रथम सूक्त के मन्त्र संख्या ३,४,५ और ६ भी इन्द्र के विषय में हैं। यहाँ हम उनका वर्णन कर रहे हैं।

अमित्रसेनां मघवन्नस्मान्छत्रूयतीमभि ।
युवं तानिन्द्र वृत्रहन्नग्निश्च दहतं प्रति ।। (अथर्व० ३-१-३)

अन्वयार्थ—(मघवन् ! अस्मान् अमित्र सेनां शत्रूयतीं) समूह में शत्रु का-सा व्यवहार करते हैं जो वे हम पर विरोधी, हमें हानि पहुँचाने वाले हैं हे मघवन् !

वृत्रहन् इन्द्रः च अग्निः युवं तान् प्रति दहतं) वृत्र वरुणों का हनन (आवेश रहित करने) वाले इन्द्र और अग्नि तुम दोनों उनको फूंक डालो।

अग्नि ईश्वरीय शक्ति का नाम है। इसके साथ इन्द्र की शक्ति मिलकर किसी प्रकार का अस्त्र बनाने की बात है।

वृत्रों का हनन करने वाले इन्द्र का संकेत है इन्द्र के कार्य की ओर जो ऋग्वेद १३२ में वर्णन किया गया है। इसी कारण हम समझते हैं कि किसी आणविक अस्त्र की बात हो रही है।

अग्नि (परमात्मा की शक्ति और इन्द्र का संयोग केवल) उस समय ही होता है जब परमाणु को असाम्यावस्था में बदला जाता है। वही शक्ति वैश्वानर कहलाती हैं। जब वह परमाणु पर सवार होकर इन्द्र को कार्य करने की सुविधा मिलती है यहाँ पर कुछ उसी का वर्णन किया गया है। परमात्मा की अग्नि और इन्द्र की शक्ति मिलकर घोर बलशाली शत्रु का विरोध करने के लिए कहा गया है।

सूक्त का अगला मन्त्र इस प्रकार है—

प्रसूत इन्द्र प्रवता हरिभ्यां प्र ते वज्रः प्रमृणन्नेतु शत्रून् ।
जहि प्रतीचो अनूचः पराचो विष्वक् सत्यं कृणुहि चित्तमेषाम् ।।
(अथर्व० ३-१ ४)

अन्वयार्थ—(इन्द्र हरिभ्याम् प्रवता तं प्रसूतः वज्रः प्र शत्रून् प्रमथन्) हे इन्द्र ! तू अपने अश्वों (सत्व और तमस्) से ले जाये जाते हुए तेरा बनाया गया वज्र भली प्रकार बढ़ता हुआ शत्रु को पीड़ा दे।

(प्रतीचः अनूचः सत्यं कृणुहि। एषाम् पराचः चित्रं विश्वं जहि) सामने से पहलू की ओर से जगत् की रचना कर विमुख होने वाले को सब ओर चैतन्यता से (भली प्रकार सोच विचारकर) मार डाल।

इन्द्र के मार डालने का अर्थ है पदार्थ को आवेश रहित कर देना। यही ऋग्वेद १-३२ में भी वृत्रों को मार डालने का अभिप्राय ग्रहण किया गया था।

सूक्त का अगला मन्त्र है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन्द्र सेनां मोहयामित्राणाम् ।
अग्नेर्वातस्य ध्राज्या तान् विषूचो वि नाशय ।।

(अथर्व० ३-१-५)

अन्वयार्थ—(इन्द्र अमित्राणां सेनां मोहया) इन्द्र विरोधियों के समूह को मोहित कर ले।

(अग्नि: वातस्य ध्राज्या विशूच: तान् विनाशय) अग्नि उत्पन्न गति के बल से सब ओर फैलाने वाली (अर्यमा अणुओं) को नष्ट कर दे।

अर्यमा यदि पृथक् रूप से देखें तो जीवन के लिए विनाशकारी होते हैं। इस मन्त्र में कहा है कि यदि वे किसी प्रकार स्वतन्त्रता से विचरने लगें तो शत्रु सेना तथा इन्द्र के मित्र और वरुण उनको मार डालें। अर्थात् अपने घेरे में ले लें।

यह अग्नि तथा वायु के सहाय से सम्भव है।

सूक्त का अगला मन्त्र है—

इन्द्र सेनां मोहयतु मरुतो घ्नन्त्वोजसा ।
चक्षूंष्यग्निरादत्तां पुनरेतु पराजिता ।।

(अअर्व० ३-१-६)

अन्वयार्थ—(इन्द्र: मरुत: सेनां मोहयतु ओजसा घ्नन्तु) इन्द्र मरुतों के समूहों को मोहित कर ओज (आवेश) को नष्ट कर देता है।

(अग्नि: एतु पराजिता पुन: चक्षूंसि आदत्ताम्) अग्नि इस पर विजयी होकर चारों ओर दृष्टि की शक्ति देता है।

इस मन्त्र में कहा गया है कि जब मरुत् बनते हैं तो आवेश-रहित होते हैं। इन्द्र उनको सब ओर से बन्द कर देता है।

अग्नि—वैश्वानर अग्नि की वस्तुओं को आवेशयुक्त रखने के लिए नियुक्त है। वह मरुत् बनने के समय पराजित हो जाती है।

इस प्रकार इन्द्र और अग्नि का संघर्ष कार्य-जगत् में किस प्रकार चलता है, इसी का इसमें वर्णन किया गया है।

अथर्ववेद तृतीय कांड सूक्त द्वितीय

अथर्ववेद के तृतीय काण्ड के द्वितीय सूक्त मन्त्र संख्या ३ और ४ का देवता अर्थात् विषय भी इन्द्र ही है। यहाँ पर हम इन दोनों मन्त्रों को उद्धृत कर रहे हैं।

पहला मन्त्र है—

इन्द्र चित्तानि मोहयन्नर्वाङ् आकूत्या चर ।
अग्नेर्वातस्य ध्राज्या तान् विषूचो वि नाशय ।।

(अथर्व० ३-२-३)

अन्वयार्थ—(इन्द्र ! चित्तानि मोहयन अर्वाङ् आकूत्या चर) हे इन्द्र ! चित्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को मोहित कर सामने आ। चारों ओर से संकल्प कर विशेष नाश का।

(अग्ने ! वातस्य ध्राज्या तान् विशूचः विनाशय) हे अग्ने ! गति के धक्के से उसकी (निर्माणाधीन जगत् की) विपरीत गति को नाश कर दे।

अग्नि परमात्मा की आदि शक्ति है। वह ही वायु (गति) उत्पन्न करती है। धक्का वायु का है परन्तु करने वाला इन्द्र है।

इन्द्र तोड़-फोड़ का कार्य मित्र आपः की सहायता से करता है। यह इन्द्र का वज्र कहाता है। वैदिक विचारों की दृष्टि से वरुण आपः (प्रोटोन) छाजन अर्थात् संरक्षण का कार्य करते हैं और मित्र आपः (इलेक्ट्रोन) तोड़-फोड़ का कार्य करते हैं।

इस सूत्र का अगला मन्त्र है—

व्याकूतय एषामिताथो चित्तानि मुह्यत।
अथो यदद्यैषां हृदि तदेषां परिनिर्जहि॥

(अथर्व० ३-२-४)

अन्वयार्थ—(अथो इत चित्तानि मुह्यत एषां वि आकूतयः) और वहाँ चित्त को मोहित कर उनको विकृत विचार का कर दे।

(अथो यत् अद्य ऐषां हृदि तत् एषां परि निःजहि) और जब आज इनकी बुद्धि सर्वथा नष्ट कर दो।

यहाँ पर बुद्धि नाश की जो बात है उसे केवल अलंकार ही समझना चाहिये। मन्त्र का अभिप्राय यह है कि जो पदार्थ उपकारी नहीं बन रहा है, उनको ऐसे मार्ग पर लगा दे कि वे स्वतः ही विनष्ट हो जायें।

ये दोनों ही मन्त्र इन्द्र के तोड़-फोड़ के काम का वर्णन करते हैं।

अथर्ववेद के इसी सूक्त में मन्त्र संख्या पाँच का देवता 'आपः' है। आपः इन्द्र की सन्तान है। इस कारण हम यहाँ पर इस मन्त्र को भी उद्धृत कर रहे हैं।

मन्त्र इस प्रकार है—

अमीषां चित्तानि प्रति मोहयन्ती गृहाणांगान्यप्वे परेहि।
अभि प्रेहि निर्दह हृत्सु शोकैर्ग्राह्या मित्रांस्तमसा विध्य शत्रून्॥

(अथर्व० ३-२-५)

अन्वयार्थ—(अप्वे ! अमीषां चित्तानि अंगानि प्रतिमोहयन्ति पर इ हि गृहण एति) हे अपाओ ! इनके चित्तों को तथा अंगों को मोह लो। यहाँ ग्रहों पर बहकर आओ।

यह जगत् के बिगड़े पदार्थों के विषय में ही कहा है कि अपाः उनको तोड़-फोड़ दे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सारांश

अथर्ववेद के कुछ ही मन्त्र हमने यहाँ उद्धृत किये हैं। इन सबका देवता अर्थात् विषय इन्द्र है। हमने यह बताने का यत्न किया है कि इन मन्त्रों में भी जब इन्द्र देवता के रूपों में आता है तो उसका अभिप्राय प्रकृति की त्रिगुणात्मक शक्ति से ही है। यहाँ अथर्ववेद में भी इन्द्र से अभिप्राय वही है जो कि ऋग्वेद में बताया गया है। वह अभिप्राय है 'परमाणु के अन्तर्गत त्रिगुणात्मक शक्ति।'

वेदों के अभिप्राय में परस्पर विरोध नहीं है। इस कारण यह सर्वमान्य है कि वेद एक ही व्यक्ति द्वारा कहे गये हैं। आर्य परम्परा के अनुसार वह महान् ज्ञानवान् परमात्मा है।

ऋग्वेद का मुख्य विषय तो कल्प है। कल्प का अर्थ है सृष्टि-रचना काल। अभिप्राय यह है कि सृष्टि-रचना, सृष्टि का चलन और प्रलय।

अथर्ववेद का मुख्य विषय है इस रचित जगत् में मनुष्य का अनुभव और व्यवहार। वेद के मुख्य विषय के बदल जाने पर भी देवता सम्बन्धी कल्पना चारों वेदों में एक समान ही है।

इससे पूर्व के पृष्ठों में हमने पहले ऋग्वेद के कुछ मन्त्रों के आधार पर इन्द्र के अर्थ जानने का यत्न किया था। तदनन्तर अथर्ववेद के प्रथम तीन काण्डों के इन्द्र देवता के आधार पर, उसके तदनुरूप अर्थ किए हैं।

इन दोनों वेदों में इन्द्र के मन्त्रों के विषय के रूप में, एक ही अर्थ बने हैं।

आगे के पृष्ठों में हम यजुर्वेद के कुछ मन्त्र लेकर अपना अध्ययन जारी रखना चाहते हैं। यजुर्वेद के भी उन्हीं मन्त्रों को हम उद्धृत कर रहे हैं जिनका विषय (अर्थात देवता) इन्द्र है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यजुर्वेद के इन्द्र विषयक मन्त्र

यजुर्वेद का मुख्य विषय है शिक्षा। शिक्षा का उद्देश्य है मानव जीवन को व्यवहार से युक्त करना। यजुः शब्द 'यज्' धातु से व्युत्पन्न है। इसका अर्थ है संयुक्त होना, पूजा करना। पूजा से अभिप्राय है पदार्थों का अर्थ समझकर उनका प्रयोग अर्थात् उनसे युक्त होना।

सामान्य भाषा में कर्म से युक्त करने वाले विधि-विधान को यजुः कहते हैं। इसे यज्ञ भी कहा जाता है। जिस प्रक्रिया में कर्म से युक्त हुआ जाय उसे यज्ञ कहा गया है।

कर्म तो जीवन-यापन और उसके निमित्त किया गया कार्य है और इस विषय में हमारा यह मत है कि मनुष्य का प्रत्येक कर्म, जब वह उद्देश्य, प्रक्रिया और परिणामों से भली प्रकार से युक्त हो तो यज्ञ कहाता है। सरल भाषा में कर्म, कर्म की प्रक्रिया और कर्म का फल भली प्रकार युक्त हो तो वह यज्ञ कहा जा सकता है।

जीवन का इन युक्त कर्मों से इन्द्र (परमाणु के अन्तर्गत त्रिगुणात्मक शक्ति) का भी कुछ योगदान है अथवा नहीं, यही इन्द्र का यज्ञ से सम्बन्ध बता सकता है।

इसी उद्देश्य से हम उन मन्त्रों का अध्ययन प्रस्तुत कर रहे हैं जिनमें परमाणु के अन्तर्गत त्रिगुणात्मक शक्ति का वर्णन किया गया हो।

यहाँ पर हम अपना भाव स्पष्ट करने के लिए, स्वामी दयानन्द सरस्वती के एक आर्यसमाजी शिष्य की बात का उल्लेख कर देना उपयुक्त समझते हैं, इससे हमारा भाव भी स्पष्ट हो जायेगा।

पण्डित सुदर्शन देव आचार्य, एम० ए०. ने स्वामी दयानन्दकृत यजुर्वेद भाष्य के प्राक्कथन में देवता की सूची में इन्द्र देवता के विषय का वर्णन करते हुए लिखा है—

इन्द्र=ईश्वर, भौतिक अग्नि, यज्ञ। (१-३१)

ईश्वर=२-१०, ३-३४, १७-६१, ३२-१३ इत्यादि।

इस विषय में हम कहना चाहते हैं कि जो कुछ उन्होंने स्पष्ट करने का यत्न

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किया है वही नितान्त अस्पष्ट है और यह नितान्त अशुद्ध भी है।

उन्होंने इन्द्र का अर्थ किया है ईश्वर, भौतिक अग्नि, यज्ञ इत्यादि।

यदि मन्त्र का सूचक देवता ही अस्थिर अर्थ वाला हो तो उसके आधार पर मन्त्रार्थ भी अस्थिर हो जायेंगे। इसका दुष्परिणाम यह होगा कि भाष्यकारों को मनमाने अर्थ करने का अवसर मिल जायेगा, जो कि आलोचना का विषय भी बन जायेगा।

इस सम्बन्ध में हमारा यह दृढ़ मत है कि वेद की भाषा न तो अस्पष्ट है और न ही अनेकार्थक है। भाष्यकारों में यह कमी है कि वे स्वयं मन्त्र का अर्थ न समझ सकने के कारण इस प्रकार की अस्थिर बातें करते हैं।

जब तक कि मन्त्र का विषय, जिस सम्बन्ध में उसका निर्वचन हुआ है, स्थिर नहीं होगा, मन्त्र के अर्थ के विषय में स्पष्टता, स्थिरता और प्रामाणिकता नहीं हो सकती। अतः मंत्र के देवता का अर्थ स्पष्ट, स्थिर और निश्चित होना परमावश्यक है।

हमारा यह सुविचारित और निश्चित मत है कि देवता, जो मन्त्र के विषय का सूचक है, स्थिर अर्थ वाला शब्द होना चाहिए। अन्यथा अर्थ का अनर्थ होना सहज सम्भाव्य है। इस दृष्टि से हम स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि इस सम्बन्ध में हम न तो आचार्य सुदर्शन देव और न ही स्वामी दयानन्द के मन्तव्य से सहमत हैं।

यजुर्वेद के प्रथम अध्याय के बारहवें मन्त्र का देवता 'अप्सवितारौ' है।

स्वामी दयानन्द सरस्वती इस 'अप्सवितारौ' का अर्थ 'जलम् ईश्वरः' करते हैं।

हमारी दृष्टि में इस शब्द का अर्थ है—'दो अपः विस्तार पाये हुए।'

अपः का अर्थ हम ऋग्वेद १-१६३-३, ४ की व्याख्या में स्पष्ट कर चुके हैं।

मन्त्र इस प्रकार है—

पवित्रे स्थो वैष्णव्यौ सवितुर्वः प्रसव उत्पुनाम्यच्छिद्रेण पवित्रेण
सूर्य्यस्य रश्मिभिः।
देवीरापोऽअग्रेगुवोऽ अग्रेपुवोऽ अग्रेऽइममद्य यज्ञं नयताग्रे
यज्ञपति ँ सुधातुं यज्ञपतिं देवयुवम्।। (यजु० १-१२)

अन्वयार्थ—(पवित्रेस्थः सवितुः वः सूर्यस्य रश्मिभिः उत प्रसवे अच्छिद्रेण पवित्रेण वैष्णव्यौ पुनामि)पवित्र होओ। सर्वप्रेरक परमात्मा सूर्य रश्मियों के द्वारा उत्पन्न करता है, बिना रुकावट पवित्र करने के लिए दो व्यापक कल्याणकारी (साधन)।

(देवीः आपः अग्रे गुवः अग्रे पुवः इममद्य यज्ञं अग्रे नयत। यज्ञपतिं सुधातुं देवयुवम्) दिव्य गुणवाली आपः अन्तरिक्ष में आगे बढ़े, पृथिवी पर आगे बढ़े।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आज इस यज्ञ को आगे बढ़ावें। यज्ञ करने वालों को सुवर्णादि से और दो दिव्य (ऊर्जा शक्तियों) से युक्त करें।

वस्तु-स्थिति यह है कि स्वामी दयानन्द सरस्वती और अन्य व्याख्याता आचार्य सुदर्शन देव ने ऋग्वेद १-१-६३-३, ४ को तथा ऋग्वेद १-१३६-२, ३ को कदाचित् इस सन्दर्भ में देखा ही नहीं। यदि देखा है तो उन्होंने उसको उस प्रकार समझा नहीं है।

आपः शब्द स्त्री लिंग है। यह सदा बहुवचन में ही प्रयुक्त होता है। ऊपर हमने ऋग्वेद के जिन मन्त्रों का उल्लेख किया है उनमें इसके अर्थ भली प्रकार समझाये गये हैं। इस पुस्तक के आरम्भ में भी हमने बताया है कि ये असाम्यावस्था में परमाणुओं के निबन्धन हैं। ये तीन प्रकार के हैं। इनमें से भी दो तो आवेशयुक्त और सक्रिय हैं। वे दो हैं मित्र और वरुण। ये सूर्य अथवा अन्तरिक्ष में बनते हैं। इनको ही यजुर्वेद १-१२ में वैँष्णव्यौ कहा है। ये निरन्तर परमात्मा की कृपा से सूर्य में बनते हुए सूर्य किरणों के साथ अन्तरिक्ष से पृथिवी पर आ रहे हैं और यहाँ मनुष्य के कार्यों में सहायक हो रहे हैं।

पृथिवी पर तो तीन प्रकार के निबन्धन आते हैं। इनको देवियाँ कहा है। ये आपः सूर्य किरणों में आकर वनस्पतियों में समा जाती हैं और वनस्पतियों से अपनी ऊर्जा धन-धान्य के रूप में मनुष्यों को देती हैं।

इस मन्त्र में भी यही कहा है कि रश्मियों से दो (मित्र और वरुण = इलैक्ट्रोन तथा प्रोटोन) कल्याण करने के लिए आते हैं। जिस यज्ञ अर्थात् मनुष्य के कार्य में ये सहयोग देते हैं वह मनुष्य धन-धान्य से प्लावित हो जाता है। ये दिव्य गुणवाली उस मनुष्य को मिले और वह पवित्र होवे।

यजुर्वेद का अगला मन्त्र है—

युष्माऽइन्द्रोऽवृणीत वृत्रतूर्य्यं यूयमिन्द्रमवृणीध्वं वृत्रतूर्य्ये प्रोक्षिता स्थ। अग्नये त्वा जुष्टं प्रोक्षाम्यग्नीषोमाभ्यां त्वा जुष्टं प्रोक्षामि॥ दैव्याय कर्मणे शुन्धध्वं देवयज्यायै यद्वोऽशुद्धाः पराजघ्नुरिदं वस्तच्छुन्धामि॥

(यजु० १-१३)

इस मन्त्र का देवता इन्द्र है।

अन्वयार्थ—(युष्माः इन्द्रः वृत्रतूर्ये अवृणीत) तुमको (आपः—ऊपर के मन्त्र में कहे गये को) पुष्टि करके इन्द्र, जो वृत्रों को मारने वाला है, प्राप्त करे।

[इन्द्र वृत्रों को हनन करने वाला अर्थात् आवेशरहित करने वाला है। (इस प्रसंग में ऋग्वेद १-३२ द्रष्टव्य है।) उनको प्राप्त किया जाय।]

(यूयं इन्द्र वृत्रतूर्ये प्रोक्षिता अवृणीध्वं स्थ) तुम वृत्रों को मारने वाले इन्द्र का जल सिंचन (स्वागत) किया जाय और स्वीकार किया जाय।

(त्वा अग्नये जुष्टं प्रोक्षामि। त्वा-अग्नि षोमोभ्यां जुष्टं प्रोक्षामि) तुम (इन्द्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को) अग्नि से संयुक्त कर जल सिंचन करता हूँ। तुमको अग्नि और सोम से संयुक्त कर जल सिंचन करता हूँ।

(दैव्याय कर्मणे शुन्धध्वं। यत दैव यज्ञाये व अशुद्धाः पराजघ्नुः) दिव्य कर्मों में (श्रेष्ठ निर्माण कार्यों में) शुद्ध किया जाय। बढ़िया निर्माण-कार्य में तुम अशुद्ध व्यर्थ जाते हो।

(इदं वः तत्शुन्धामि) इसलिए तुमको शुद्ध करता हूँ।

यह निर्माण कार्य करने वाले उद्योग का चित्र है। कहा गया है कि आपः जिनका इससे पूर्व के मन्त्र में वर्णन किया गया है, उनको ग्रहण करने के लिए इन्द्र-शक्ति को प्राप्त किया जाय।

आधुनिक भाषा में इन्द्र विद्युत्-धारा का नाम है। अर्थात् इलैक्ट्रिक करेंट। इसमें मित्र आपः धारारूप प्रवाहित हो रहे होते हैं। इस इन्द्र को प्राप्त कर जल-सिंचन से अभिप्राय है कि किसी का स्वागत किया जाय। वह वैदिक काल की परम्परा है कि जब कोई मानवीय व्यक्ति मिलने आये तो उस पर कुशा से जल छिड़का जाय।

इसका अभिप्राय इन्द्र का स्वागत करने से है।

मन्त्र में आगे कहा है कि इन्द्र का अग्नि से संयोग किया जाय। यहाँ अग्नि से अभिप्राय, सामान्य जातवेदः अग्नि से है।

इसका अभिप्राय यह है कि विद्युत्-धारा का उद्योग में प्रयोग किया जाय और सामान्य अग्नि का भी प्रयोग किया जाय। अग्नि के साथ सोम के प्रयोग का भी उल्लेख है।

सोम से अभिप्राय है सौम्य अवस्था में पदार्थ अर्थात् कच्चा माल जिसे अंग्रेजी में 'रा मेटीरियल' कहा जाता है।

इस प्रकार विद्युत्-धारा अग्नि और कच्चे माल का प्रयोग का यहाँ उल्लेख किया गया है।

इसी मन्त्र में आगे कहा गया है कि दिव्य(कर्मों बढ़िया माल तैयार करने वाले कारखानों) में कच्चे माल को शुद्ध किया जाय। जो माल अशुद्ध होगा वह रद्दी में फेंक दिया जायेगा।

इसी कारण कच्चे माल को शुद्ध करने के लिए कहा गया है।

यजुर्वेद में मानव जीवन में कार्य की व्यवस्था का ढंग बतलाया गया है। मानव जीवन में जन-साधन कार्य और परिणाम तथा परिणामों का उपयोग भली प्रकार संयुक्त हो जाय तो उसे यन्त्र कहा जाता है।

यजुर्वेद में इसका ही विशेषतया वर्णन किया गया है।

यजुर्वेद के द्वितीय अध्याय के मन्त्र संख्या १० का देवता भी इन्द्र है।

अब इस मन्त्र में भी इन्द्र का अर्थ जानने का हम यहां यत्न कर रहे हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह मन्त्र है—

मयीदमिन्द्रऽइन्द्रियं दधात्वस्मान् रायो मघवानः सचन्ताम् ।
अस्माकं सन्त्वाशिषः सत्या नः सन्त्वाशिषऽउपहूता पृथिवी
मातोप मां पृथिवी माता ह्वयतामग्निराग्नीध्रात् स्वाहा ।।

(यजु० २-१०)

अन्वयार्थ—(इन्द्र मयी इन्द्रं इन्द्रियं दधातु) इन्द्र मेरी इन इन्द्रियों को देता है (इन्द्रियों को शक्ति देता है) ।

(अस्माकं रायः मघवानः सचन्ताम्) हमारा धन-धान्य इन्द्र ने दिया है ।

(अस्माकं आशिषः सत्याः सन्तु) हमारी शुभकामना सफल सिद्ध हों ।

(नः आशिषः उपहूताः सन्तु) हमारी कामनायें ऊपर उठने वाली हों ।

(पृथिवी माता माम् ह्वयताम्) पृथिवी माता मुझको समीप बुलायें अपना लाभ पहुँचायें ।

(अग्निः आग्नीध्रात् स्वाहा) अग्नि और अग्नि को सदा संचित रखने का स्थान कल्याणकारी हो ।

इन्द्र ही इन्द्रियों में शक्ति देता है । वह किस प्रकार देता है, इसका विचार करना होगा । इन्द्र प्रकृति की त्रिगुणात्मक शक्ति से बने परमाणुओं के निबन्धन आपः सूर्य में बनकर धाराओं में पृथिवी पर आते हैं । पृथिवी पर आकर वे आपः वनस्पतियों में समा जाते हैं । अन्न में समा जाते हैं जो हम भोजन द्वारा आत्मसात् करते हैं । भोजन से इन्द्रियों में शक्ति आती है ।

इस प्रकार इन्द्र ही इन्द्रियों को शक्ति देता है ।

इन्द्र द्वारा प्रदत्त उस शक्ति के आश्रय हम कार्य करते हैं और उसके माध्यम से धन-धान्य का संचय करते हैं तथा सांसारिक उन्नति करते हैं । पृथिवी भी हमारी इस शक्ति में सहयोग देती है । यह हमको समीप बुलाने से अभिप्राय है कि अपने में जो पदार्थ वह रखती है उनको हमें देवे ।

प्राचीन काल में घर में सदा अग्नि को प्रज्ज्वलित रखने का प्रचलन था । वह स्थान, जहाँ अग्नि सदा प्रज्ज्वलित रहती थी अग्नींध्र कहा जाता था ।

इस मन्त्र में यह कामना की गई है कि घर में अग्नि सदा बनी रहे और वह हमारा कल्याण करने वाली हो ।

इसी प्रकार यजुर्वेद के द्वितीय अध्याय के १६वें मन्त्र के पूर्वार्द्ध के देवता द्यावा, पृथिवी और मित्र वरुण हैं ।

मन्त्र का वह अंश निम्नोद्धृत है—

वसुभ्यस्त्वा रुद्रेभ्यस्त्वादित्येभ्यस्त्वा संजानाथां
द्यावापृथिवी मित्रावरुणौ त्वा वृष्ट्यावताम् ।।

(यजु० २-१६)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्वयार्थ—(त्वा वसुभ्य: रुद्रेभ्य: आदित्येभ्य: सञ्जानाथां। द्यावापृथिवी मित्रा वरुणौ त्वा वृष्ट्य अवताम्) तुमको (परमात्मा को) वसुओं के द्वारा रुद्रों (इन्द्र सन्तान) के द्वारा आदित्यों (आदिति की सन्तान) के द्वारा जाना जाता है।

सूर्य और पृथिवी पर मित्र और वरुण तुम्हारी वर्षा रक्षार्थ करते हैं।

यहाँ पर तुम्हारी से अभिप्राय है परमात्मा की शक्ति अथवा कृपा की वर्षा जो सूर्य और पृथिवी पर मित्र और वरुण के द्वारा होती है। यह वर्षा रक्षा करती है।

यहाँ भी मित्र और वरुण से अभिप्राय इन्द्र की सन्तान है। आप: की वर्षा पृथिवी पर होती है तो प्राणियों की रक्षा होती है।

मित्र और वरुण परमाणुओं का निबन्धन (संयोग) हैं। ये त्रिगुणात्मक शक्ति का प्रतीक हैं।

यजुर्वेद के अध्याय दो के २२वें मन्त्र का देवता इन्द्र है।

वह मन्त्र है—

सं बर्हिरङ्क्तां ँ् हविषा घृतेन समादित्यैर्वसुभि: सम्मरुद्भि:।
समिन्द्रो विश्वदेवेभिरंक्तां दिव्यं नभो गच्छतु यत् स्वाहा॥

(यजुर्वेद २-२२)

अन्वयार्थ—(सं बर्हि: अंक्तां घृतेन हविषा सं आदित्य: वसुभि: मरुद्भि: सं) अन्तरिक्ष में अदिति की सन्तान आप: के साथ, वसुओं के साथ और मरुतों के साथ (संयुक्त होकर) कल्याणकारी हो।

(सं इन्द्र: विश्वदेवेभि: अंतां यत् दिव्यं नभ: गच्छतु स्वाहा) इन्द्र देवताओं से जब संयुक्त हो दिव्य बन जाता है तो कल्याण करता है।

इस मन्त्र में भी प्रकृति की सन्तान आप: के कार्य का ही वर्णन है। इन्द्र की शक्ति ही आप: में होती है। इस कारण उस शक्ति से वसु बनते हैं, मरुत् बनते हैं। अत: इन्द्र इनसे संयुक्त हो जाता है। तब सृष्टि-रचना का कार्य वेग से होने लगता है। यही कल्याणमय कार्य है जो हो रहा है।

इस कल्याणमय कार्य से जन्म लेने वाले प्राणियों का कल्याण हो।

यहाँ हम एक बात स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि जहाँ तक मन्त्रार्थ का सम्बन्ध है वहाँ हम स्वामी दयानन्द सरस्वती के अर्थ में किसी प्रकार का दोष नहीं पाते। यदि अन्तर है तो केवल निर्वचन करने में है। इसमें कदाचित् कारण यह है कि विज्ञान अर्थात् साइंस के विषय को स्वामी जी न तो जानते थे और न समझते ही थे। यही कारण है कि वे विज्ञान से सम्बन्धित शब्दों के पारिभाषिक अर्थ देने में असमर्थ रहे हैं।

वे तथा अन्य सभी मध्यकालीन अथवा वर्तमान युग के भी विद्वान् और भाष्यकार वसु, आप:, मरुत् इत्यादि शब्दों के अर्थ पाणिनी की भाषा अथवा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निघण्टु से लगाते हैं। किन्तु हम समझते हैं कि वेदार्थ करने में ये दोनों ही साधन अपर्याप्त हैं; परिणाम यह होता है कि इनके आधार पर जो वेदार्थ करते हैं उनसे अशुद्धि अधिक होती है। इन साधनों के माध्यम से वेद का निर्वचन करना सम्भव नहीं है।

पाणिनी व्याकरण के आधार पर मरुत् के अर्थ बनते हैं 'वह जो मरणशील है।' स्वामी जी तथा अन्य भाष्यकारों ने इसके अर्थ 'मरणशील' समझकर ही उसका अभिप्राय कर दिया 'मनुष्य'।

किन्तु वास्तविकता तो यह है कि मरुत् एक प्रकार के परमाणु संग्रह को कहते हैं, जो सहज ही टूट जाता है। इनका वर्णन ऋग्वेद १-६ में किया गया है। उसमें इन्द्र का नाम मरुत् बताया है'

भाष्यकारों ने ऋग्वेद को ध्यान से पढ़ने और समझने का यत्न नहीं किया, इस कारण वे मरुत् का गलत अभिप्राय ले बैठे।

बस यही अन्तर है उन भाष्यकारों में और हमारे भाष्य करने की प्रक्रिया में। इसी प्रकार आपः और वसु भी हैं। इस पर भी मध्यकालीन भाष्यकारों की अपेक्षा स्वामी दयानन्द का भाष्य इन वैज्ञानिक निर्वचनों का द्वार खोलता है।

वस्तुस्थिति यह है कि स्वामी दयानन्द जी द्वारा उस खुले द्वार से निकलकर ही हम अपना विज्ञान का ज्ञान सार्थक करने में सफल हो पाये हैं। इसके अतिरिक्त अन्य किसी भी भाष्य में इस प्रकार खुला द्वार उपलब्ध नहीं है।

एक उदाहरण देकर हम अपना मन्तव्य स्पष्ट कर देना चाहते हैं।

जैमिनी ब्राह्मण ३-३८१ में लिखा है—

ततो मरुतो सृजत् ईशान-मुखान।

अर्थात् तब मरुत् बने और उनके मुख ईशान कोण को हो गये।

आधुनिक विज्ञान भी यह स्वीकार करता है कि मौलिक्यूल में चुम्बकीय शक्ति होती है। प्रत्येक चुम्बक यदि घूमने के लिए स्वतन्त्र हो तो वह ईशान कोण की ओर घूम जाता है। इसका यह अभिप्राय हुआ कि प्रत्येक मरुत् बनते ही एक चुम्बक का रूप ग्रहण कर लेता है। इस कारण मरुत् और मौलिक्यूल पर्यायवाचक शब्द हैं।

इसी प्रकार वेद को वर्तमान समझने योग्य भाषा में लिखने के लिये वेद के भाष्यकारों की आधुनिक विज्ञान में गति होनी परमावश्यक है।

यजुर्वेद के द्वितीय अध्याय के ३४वें मन्त्र का देवता आपः है।

स्वामी दयानन्द ने आपः का अर्थ जल किया है।

वह वेद मन्त्र है—

ऊर्ज्जं वहन्तीरमृतं घृतं पयः कीलालं परिस्रुतम्।
स्वधा स्थ तर्पयत मे पितॄन्॥ (यजुर्वेद २-३४)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्वयार्थ—(ऊर्ज्ज घृतं पयः कीलालं परिस्रुतम् अमृतं वहन्ति) उर्जः (आपः) घी, दूध, सुसंस्कृत अन्न और पके फलों में अमृत (जीवन) शक्ति बहाते हैं।

इन सब खाने योग्य पदार्थों में अमृत (जीवन शक्ति) आपः की होती है।

यहां इस मन्त्र में जो अर्जः शब्द आया है उसका अभिप्राय आपः से है। इसका कारण स्पष्ट है। वह यह कि इस मन्त्र का देवता आपः है।

इतने उद्धरण देकर अब हम यजुर्वेद प्रकरण यहीं समाप्त करते हैं।

हम समझते हैं कि जहां-जहां देवता के रूप में इन्द्र, आपः, मित्र, वरुण शब्द आये हैं वहां-वहां उनका अभिप्राय परमाणु अन्तर्गत त्रिगुणात्मक शक्ति से ही है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सामवेद के इन्द्र-विषयक मन्त्र

इस प्रकरण में अब हम कुछ मन्त्र सामवेद से उद्धृत करके अपने विषय की पुष्टि करना चाहते हैं। यहाँ पर भी हमने इन्द्र आदि से सम्बन्धित मन्त्रों का ही चयन किया है।

सामवेद के पूर्वार्चिक के पंचम अध्याय के पंचम दशति की मन्त्र संख्या ८ का देवता इन्द्र है।

मन्त्र है—

अध ज्मो अध वा दिवो बृहतो रोचनादधि।
अया वर्धस्व तन्वा गिरा ममा जाता सुक्रतो पृण ।।

(सा० पूर्व० १-५-८)

अन्वयार्थ—(जाता सुक्रत:, अध: ज्मो वा अध बृहत: दिव: ममा गिरा रोचनात् अय: वर्धस्व पृणु) भले काम करने वाला उत्पन्न हुआ मनुष्य पृथिवी पर अथवा महान् अन्तरिक्ष में, मेरी स्तुति से चमकने से आयु में वृद्धि करे और प्रसन्न होवे।

यहाँ पर 'मेरी स्तुति' से अभिप्राय इन्द्र की स्तुति करने से है।

स्तुति से अभिप्राय है गुण, कर्म, स्वभाव का ज्ञान प्राप्त कर उनका प्रयोग करना।

इस मन्त्र का देवता इन्द्र है। अत: इन्द्र के गुण, कर्म स्वभाव के ज्ञान से आयु दीर्घ हो, आयु में वृद्धि हो तो फिर इन्द्र के गुणों का उपयोग हो पाना सम्भव है।

सामवेद के पूर्वार्चिक के द्वितीय अध्याय की प्रथम दशति इन्द्र के विषय में ही है।

इसका प्रथम मन्त्र है—

तद्वो गाय सुते सचा पुरुहूताय सत्वने ।।
शं यद्गवे न शाकिने ।। (साम० पूर्व० २-१-१)

अन्वयार्थ—(तत् व: न: शाकिने सत्वने पुरुहूताय सुते सचा गवे न शं गाय) वह जो तुम शक्तिमान् शत्रुनाशक बहुत से पुकारा जाता हुआ है सन्तान के लिए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(मनुष्यों के लिए) पृथिवी समान सुखपूर्वक स्तुति की जाय।

इस मन्त्र का अभिप्राय यह है कि इस पृथिवी पर सब मनुष्य मिल-जुलकर उस इन्द्र की, जो शक्तिमान् है, शत्रुनाशक है, सब जिसको प्रयोग के लिये पुकारते हैं, उसकी स्तुति करें। उसकी स्तुतिगान का अभिप्राय यह है कि इन्द्र के गुण, कर्म, स्वभाव का स्मरण कर अपना कार्य करें।

इस प्रकार यदि इसको सरल भाषा में कहा जाय तो यह कहा जायेगा कि इन्द्र पृथिवी पर एक महान् शक्ति है और हम सब लोग मिलकर उसका ज्ञान प्राप्त करें।

इस दशति का दूसरा मन्त्र है—

यस्ते नूनं शतक्रतविन्द्र द्युम्नितमो मदः।
तेन नूनं मदे मदेः।। (साम० पू० २-१-२)

अन्वयार्थ—(इन्द्रः यः ते शतक्रतः नूनं द्युम्नितमः मदः) हे इन्द्र! जो तेरे सैकड़ों कर्म हैं, वे निश्चय ही अत्यन्त ऐश्वर्ययुक्त और प्रसन्न करने वाले हैं।

(तेन मदे नूनं मदेः) उस प्रसन्नता से निश्चय प्रसन्नता होती है।

इस दशति का तीसरा मन्त्र है—

गाव उप वबावटे मही यज्ञस्य रप्सुदा।
उभा कर्णा हिरण्यया।। (साम० पू० २-१-३)

अन्वयार्थ—(गावः उप वद यज्ञस्य मही रप्सुदा उभा कर्णा हिरण्यया) वाणी यज्ञभूत के समीप आये। यज्ञ की भूमि गूंज उठे। दोनों कर्ण स्वर्गीय आनन्द प्राप्त करें।

इस मन्त्र का भावार्थ यह है कि इन्द्र की स्तुति अर्थात् उसके गुण, कर्म, स्वभाव का वर्णन यज्ञ भूमि के समीप अर्थात् उद्योग-स्थल पर आकर किया जाय। यह वर्णन इतना अधिक हो कि उससे उद्योग स्थल गूंज उठे।

इसका अभिप्राय यह हुआ कि वहाँ के सब प्राणी इण्द्र के गुणों का गान करें और उन्हें जान जाएँ। इन्द्र से होने वाले लाभ को सुनकर सब प्रसन्न हों।

इस दशति का अगला मन्त्र इस प्रकार है—

अरमश्वाय गायत श्रुतकक्षारं गवे।
अरमिन्द्रस्य धाम्ने। (साम० पू० २-१-४)

अन्वयार्थ—श्रुतकक्ष अश्वाय गायत। अरम् गवे इन्द्रस्य अरम् धाम्ने) जिसकी बगल में वेद है (अर्थात् जो वेद का ज्ञाता है) इन्द्र की शक्ति के लिए उसकी पर्याप्त स्तुति करे (उसके गुण, कर्म, स्वभाव का चिन्तन करे।) इन्द्र की स्तुति करने वाला, इन्द्र के स्वरूप का वर्णन करता है। (अथवा इन्द्र के निवास-स्थान का पता पा जाता है।)

इस मन्त्र का अभिप्राय यह है कि वेद में इन्द्र का विस्तृत वर्णन किया गया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। वेद का ज्ञाता इन्द्र की शक्ति प्राप्त करने के लिये उसके गुण, कर्म, स्वभाव का चिन्तन करे। तब वह इन्द्र के ऐश्वर्य को जान जाता है और उसको प्राप्त कर लेता है।

वेद में ही अन्यत्र वर्णन किया गया है कि इन्द्र परमाणु में रहने वाली त्रिगुणात्मक शक्ति का नाम है। जब वेद का ज्ञाता उसको प्राप्त करने की इच्छा करने लगता है और फिर प्राप्त कर लेता है तो वह इससे अपना कल्याण करता है।

इस दशति का अगला मन्त्र इस प्रकार है—

तमिन्द्रं वाजयामसि महे वृत्राय हन्तवे।
स वृषा वृषभो भुवत्॥ (साम० पू० २-१-५)

अन्वयार्थ—(महे वृत्राय हन्तवे तं इन्द्रं वाजयामसि) महान् छाजन (बाधा का नाश करने के लिये) उस इन्द्र को बलवान् करें।

(स वृषा वृषभो भुवत्) वह सिंचन करने वाला बलवान् होवे।

इन्द्र की शक्ति को गृहस्थ अधिकाधिक अपने काम में लावे। इन्द्र सिंचन करने का सामर्थ्य रखता है। सिंचन करने का अभिप्राय है कार्यसिद्धि में कौशल्।

यह स्पष्ट है कि किसी उद्योग को उन्नत करने की योजना बनाई जा रही है। उसमें इन्द्र की शक्ति का अधिकाधिक प्रयोग करने को कहा गया है।

दशति का अगला मन्त्र है

त्वमिन्द्र बलादधि सहसो जात ओजसः।
त्वं सन् वृषन् वृषेदसि॥ (साम० पू० २-१-६)

अन्वयार्थ—(इन्द्र ! त्वं बलात् अधि सहसः ओजसः जातः) हे इन्द्र ! तुम बल से अधिक साहस और धैर्य से जाने जाते हो।

(त्वं वृषन् वृषे इत असि सन्) तुम सिंचन करने वाले यहाँ सिंचन करने वाले बनो।

सिंचन से अभिप्राय हम ऊपर बता आये हैं—कार्यसिद्धि करने की योग्यता।

इन्द्र वर्तमान भाषा में विद्युत धारा (इलैक्ट्रिक करेण्ट) को कहते हैं। यहाँ इससे कार्य करने की प्रेरणा दी जा रही है।

इसका अगला मन्त्र है—

यज्ञ इन्द्रमवर्धयद्यद् भूमि व्यवर्तयत्।
चक्राण ओपशं दिवि॥ (साम० पू० २-१-७)

अन्वयार्थ—(यज्ञ इन्द्र ओपशं चक्राणं भूमिं अवर्धयत्। दिवि व्यवर्तयत्) जब यज्ञ (उद्योग धन्धा) इन्द्र के प्रयोग को फैला देता है तब (यज्ञ की) भूमि (कार्य) वृद्धि पाती है। आकाश में विपरीत स्थिति (दोष) उत्पन्न करती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उद्योग की वृद्धि से धुआँ इत्यादि से आकाश में दूषण उत्पन्न होता है।

अगला मन्त्र है—

यदिन्द्राहं यथा त्वमीशीय वस्व एक इत्।
स्तोता मे गोसखा स्यात्॥ (साम० पू० २-१-८)

अन्वयार्थ—(इन्द्रः ! यत् त्वं एक इत ईशीय यथा अहं स्तोता में वस्व गा सखा स्यात्।)

हे इन्द्र ! जब तुम अकेले ही स्वामी निर्माणकर्त्ता हो, जैसे मैं तुम्हारी स्तुति करने वाला अपने पशुधन और भूमि का स्वामी हो गया हूँ।

उपासक कह रहा है कि वह इन्द्र समान अपने गो धन और भूमि का स्वामी हो गया है।

इसी दशति का अगला मन्त्र है—

पन्यं पन्यमित्सोतार आधावत मद्याय।
सोमं वीराय शूराय॥ (साम० पू० २-१-९)

अन्वयार्थ—(सोतारः पन्यं पन्यं इत् मद्याय) सोमपान करने वाले को उत्तम यह प्रसन्न होने के लिये प्राप्त कराओ।

(सोमं वीराय शूराय) सोम का वीरों और शूरों के लिये प्रयोग।

सोम का अर्थ है पौष्टिक पदार्थ। वे पदार्थ जिनमें सोम आपः बहुत मात्रा में हों। वे शूरों और वीरों के लिये हों।

जो सोम-पान के अधिकारी हैं उनको प्रसन्न करने के लिये उत्तम-उत्तम पौष्टिक पदार्थ प्राप्त कराओ।

सोम प्राप्त कराये यजमान जो उद्योग चल रहा है। उसका उद्योग इन्द्र की सहायता से ही चल रहा है।

दशति का अगला मन्त्र इस प्रकार है—

इदं वसो सुतमन्धः पिबा सुपूर्णमुदरम्।
अनाभयिन् ररिमा ते॥ (साम० पू० २-१-१०)

अन्वयार्थ—(वसो इदं अन्धः सुतम् पिब अनाभयिन् सुपूर्णम् उदरम्)

शरीर-धारी इस अन्न को पेट में ग्रहण करे। हम निर्भय रहने वाले इस सम्पूर्ण को ग्रहण करें।

यहाँ पर शरीरधारी से अभिप्राय है जीव-जन्तु। वे पेट-भर अन्न खायें और निर्भय जीवन व्यतीत करें।

निष्कर्ष

चारों वेदों के मन्त्रों का अध्ययन यह स्पष्ट संकेत देता है कि वे सब मन्त्र जिनका देवता अर्थात् विषय इन्द्र है वे प्रकृति के अन्तर्गत त्रिगुणात्मक शक्ति की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही स्तुति के निमित्त हैं।

वेद में स्तुति का अभिप्राय है पदार्थ के गुण, कर्म और स्वभाव का ज्ञान प्राप्त करना, उनका प्रयोग कर जीवन को सुखी, स्वस्थ, सबल और उन्नत करना।

वेद ज्ञान-सागर में एक डुबकी

अथर्ववेद तृतीय काण्ड के प्रथम सूक्त का प्रथम मन्त्र है—

आयमगन् पर्णमणिर्बली बलेन प्रमृणन्त्सपत्नान्।
ओजो देवानां पय ओषधीनां वर्चसा मा जिन्वत्वप्रयावन्॥

(अथर्व० ३-५-१)

इस मन्त्र का देवता 'पर्णमणिः' है।

अन्वयार्थ—(अयं बली पर्णमणिः सपत्नान् बलेन प्रभृन् आ अगम्) यह बलवान् पर्णमणि (पत्तों का वीर्य अर्थात् हरित पर्ण) विरोधियों के अनुकूल तत्वों का बल से विध्वंस करने के लिये चारों ओर से प्राप्त होवे।

(औषधीनाम् ओजः पयः वर्चसः अप्रयान् देवानां जिन्वन्तु) वनस्पतियों का ओज मूल (पर्णमणिः) के बल को पीकर देवताओं (आपः) को सन्तुष्ट करे।

इस सूक्त के सब मन्त्र इस हरित पर्ण (Chlorophyl) का ही वर्णन करते हैं। यह भी वर्तमान विज्ञान में वनस्पतियों के कार्य का केन्द्र ही माना जाता है।

☐

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मन्त्राणामनुक्रमणिका

अ

अग्निः पूर्व आ रभतां प्रेन्द्रो	अ० १-७-४	५१
अप ज्मो अघ वा दिवो	साम० पू० १-५-८	६८
अतः परिज्मन्नागहि दिवो वा	ऋ० १-६-९	३८
अतिष्ठन्तीनामनिवेशनानां काष्ठानाम्	ऋ० १-३२-१०	३१
अदर्शि गातुरुरवे वरीयसी	ऋ० १-१३६-२	१७
अन्वान्त्यं शीर्षण्य मयो	अ० २-३१-४	५५
अपादहस्तो अपृतन्यदिन्द्रमास्य	ऋ० १-३२-७	३०
अपेन्द्र द्विषतो मनोऽप	अ० १-२१-४	५४
अपो देवीरुप ह्वये यत्र गवः	अ० १-४-३	४६
अप्सु मे सोमो अब्रवीदन्	अ० १-६-२	४९
अप्स्वन्तरमृतमप्सु भेषजम्	अ० १-४-४	४७
अमित्रसेनां मघवन्नस्मान्	अ० ३-१-३	५६
अमीषां चित्तानि प्रति	अ० ३-२-५	५८
अमूर्याउप सूर्ये याभिर्वा	अ० १-४-२	४६
अम्बयो यन्त्यध्वभिर्जामयो	अ० १-४-१	४६
अयोद्धेव दुर्मद आ हि	ऋ० १-३२-६	२९
अरमश्वाय गायत श्रुत	स० पू० २ १-४	६९
अलगण्डून् हन्मि महता	अ० २-३१-३	५५
अश्व्योवारो अभवस्तदिन्द्र	ऋ० १-३२-१२	३३
असि यमो अस्यादित्यो	ऋ० १-१६३-३	१५
अहन्नहिं पर्वते शिश्रियाणं	ऋ० १-३२-३	२८
अहन्वृत्रं वृत्रतरं व्यंसमिन्द्रो	अ० १-३२-५	२९

आ

आज्यस्य परमेनिष्ठन्	अ० १-७-२	५१
आदह स्वधामनु पुनर्गर्भत्वम्	ऋ० १-६-४	३६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आप: पृणीत भेषजं वरुथम्	अ० १-६-३	४६
आपो हिष्ठा मयोभुवस्ता न	अ० २-५-१	४७
आयमगन् पर्णमणिर्बली बलेन	अ० २-५-१	७२
इ		
इदं वसो सुतमन्धः पिबा	सा० पू० २-१-१०	७१
इन्द्र चित्तानि मोहयन्नबाङ् कूत्या	अ० ३-२-३	५७
इन्द्र सेनां मोहयतु मरुतो	अ० ३-१-६	५७
इन्द्र सेनां मोहयामित्राणाम्	अ० ३-१-५	५७
इन्द्रस्य तू नु वीर्याणि	ऋ० १-३२-१	२७
इन्द्रस्य या मही वृषत्	अ० २-३१-१	५४
ई		
ईशाना वार्याणांक्षयन्तोश्च	अ० १-५-४	४८
ऊ		
ऊर्ज्ज वहन्तीरमृतं घृतम्	यजु० २-३४	६६
क		
केतुं कृण्वन्नकेतवे पेशो	अ० १-६-३	३५
ग		
गाव उप वदवटे मही	सा० पू० २-१३	६६
च		
चित्रं देवानामुदगादनीकम्	ऋ० १-११५-१	४०
ज		
ज्याके परि णे नमाश्मानम्	अ० १-२-२	४४
त		
त उक्षितासो महिमानमाशत	ऋ० १-८५-२	३६
तद्वो गाय सुते सचा पुरुहूताय	सा० पू० २-१-१	६८
तमिन्द्र वाजयामसि महे वृत्राय	सा० पू० २-१-५	७०
तस्मा अरं गमाम वो अस्य	अ० १-५-३	४८
त्वमग्ने यातुधानानुप बद्धाम्	अ० १-७-७	५१
त्वमिन्द्र वलादधि सहसो जात	सा० पू० २-१-६	७०
द		
दासपत्नीरहिगोपा अतिष्ठन्निरुद्धा	ऋ० १-३२-११	३२
दूतो नो अग्ने भूत्वा	अ० १-७-६	५२
दृष्टमदृष्टमतृहमयो कुरूरुमतृहम्	अ० २-३१-२	५४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न

न दं न भिन्नममुया शयानं मनो	ऋ० १-३२-८	३०
नीचाव्या अभवद् वृत्र···	ऋ० १-३२-९	३१

प

पन्यं पन्यमित्सीतार	सा० पू० २-१-९	७१
पवित्रेस्थो वैष्णव्यौ सवितुर्वः	यजु० १-१२	६१
पश्याम ते वीर्यंजातवेवः प्र णो ब्रूहि	अ० १-७-५	५२
प्र ये शुम्भन्ते जनयो न सप्तयो	ऋ० १-८५-१	३९
प्रसूत इन्द्र प्रवता हरिभ्याम्	अ० ३-१-४	५६

म

मयीदमिन्द्रऽइन्द्रियं दधात्वस्मान्	यजु० २-१०	७०

य

यज्ञ इन्द्रमवर्धमयद्यत्	सा० पू० २-१-७	७०
यथाद्यांच पृथिवीं च	अ० १-२-४	४५
यदिन्द्राहन्प्रथमजामहीनामान्	ऋ० १-३२-४	२८
यदिन्द्राहं यथा त्वमीशाय	सा० पू० २-१-८	७०
यमेन दत्तं त्रित एनमायुगिन्द्र	ऋ० १-१६३-२	१२
यस्ते नूनं शतक्रतविन्द्र	सा० पू० २-१-२	६९
युञ्जन्तिं ब्रध्नमरुषं चरन्तम्	ऋ० १ ६-१	१४, ३४
युञ्जन्त्यस्य काम्या हरि	ऋ० १-६-२	१४, ३४
युष्माऽइन्द्रोऽवृणीत वृत्रतूर्ये	यजु० १-१३	६२
ये कृमयः पर्वतेषु वनेषु	अ० २-३१-५	५५
यो जात एव प्रथमो मनस्वान्	ऋ० २-१२-१	२२
यो वः शिवतमो रसस्तस्य	अ० १-५-२	४८
यो हत्वाहिमरिणात्सप्तसिन्धून्	अ० २-१२-३	२४
यः पृथिवी व्यथमानामदृहद्	ऋ० २-१२-२	२३

व

बसुभ्यस्त्वारुद्रेभ्यस्त्वा	य० २-१६	६४
विद्मा शरस्य पितरं पर्जन्यं	अ० १-२-१	४४
वि न इन्द्र मृधो जहि नीचा	अ० १-२१-२	५३
वि रक्षो वि मृघो जहि	अ० १-२१-३	५३
वि लपन्तु यातुधाना	अ० १-७-३	५१
बीलुचिदारुजत्नुभिर्गुहा	ऋ० १-६-५	३७
वृक्षं यद् गावः परिषस्वजाना	अ० १-२-३	४५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वृषायमाणो वृणीत सोमम्	ऋ० १-३२-३	२८
व्याकृतय एषामिताथो चित्तानि	ऋ० ३-२-४	५८
	श	
शं न आपोधन्वन्या	अ० १-६-४	४६
शं नो देवीरभिष्टय आपो	अ० १-६-१	४६
	स	
सुरूपकृत्नुमूतये सुदुघामिव	ऋ० १-४-१	२२
सं बर्हिरङ्क्तां हविषा घृतेन	यजु० २-२२	६५
स्वस्तिदा विशां पतिर्वृत्रहा	ऋ० १-२१-१	५३
स्तुवान्मग्न आ वह यातुधानम्	अ० १-७-१	५०
	त्र	
त्रीणि त आहुर्दिव बन्धनानि	ऋ० १-१६३-४	१६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनीषी साहित्यकार श्री गुरुदत्त की
हिन्दी जगत् को अनुपम देन

हमारी सांस्कृतिक धरोहर

श्री गुरुदत्त जी की रचनाएँ ज्ञान का अथाह भण्डार हैं। वेद, उपनिषद्, दर्शन शास्त्र, इतिहास, पुराण इत्यादि सभी विषयों पर उनकी खोज तथा उनका युक्तियुक्त, प्रमाण सहित विश्लेषण उनकी रचनाओं में हमें मिलता है। इन रचनाओं में वर्णित ज्ञान का सार इस एक ही खण्ड में प्रस्तुत किया गया है।

इस रचना के आधार ग्रन्थ हैं—

वेद और वैदिक काल, वेद प्रवेशिका, सायंस और वेद, इतिहास में भारतीय परंपराएँ, भारतवर्ष का संक्षिप्त इतिहास, धर्म तथा समाजवाद, श्रीमद्भगवद्गीता : एक अध्ययन।

भारतीय संस्कृति के विभिन्न पहलुओं का परिचय प्राप्त करने का अनुपम ग्रन्थ—आकर्षक रूप-रेखा, बढ़िया कागज़ पर सुन्दर छपाई, डिमाई आकार में पृष्ठ २५६, मूल्य १५० रुपये

हिन्दी साहित्य सदन

३०-पी, कनाट सरकस (मद्रास होटल के नीचे) नई दिल्ली-११०००१
फोन : ३४३५५७

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्यकार गुरुदत्त

प्रतिनिधि रचनाएँ

इस बीसवीं शताब्दी में यदि किसी साहित्यकार ने जन-जन पर अपनी छाप छोड़ी है तो वह हैं गुरुदत्त।

लगभग २०० उपन्यास तथा ४० विवेचनात्मक अध्ययन प्रायः सभी विषयों पर (यथा धर्म, संस्कृति, इतिहास एवं राजनीति) युक्तियुक्त एवं विवेचनात्मक ढंग से विश्लेषण उनकी विशेषता है। युनेस्को के एक अध्ययन से प्रमाणित है कि प्रेमचन्द के बाद सर्वाधिक पढ़े जाने वाला उपन्यासकार है गुरुदत्त।

सन् १८९४ में लाहौर में जन्मे गुरुदत्त ने एम०एस-सी० उत्तीर्ण कर अध्यापन कार्य शुरू किया परन्तु राजनैतिक कारणों से सरकारी सेवा का त्याग कर चिकित्सा-कार्य में लग गए। साथ-साथ साहित्य साधना आरम्भ हुई और उनकी सर्वप्रथम रचना 'स्वाधीनता के पथ पर' सन् १९४२ में प्रकाशित हुई। इस रचना ने उन्हें चोटी पर ला बैठाया। तदनन्तर 'पथिक', 'स्वराज्यदान', 'विश्वासघात' तथा 'देश की हत्या' उनके असामान्य एवं अन्यतम उपन्यास आज तक अन्यतम माने जाते हैं।

श्री गुरुदत्त की चुनी हुई रचनाएँ **'साहित्यकार गुरुदत्त प्रतिनिधि रचनाएँ'** माला में प्रकाशित की जा रही हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्यकार गुरुदत्त

प्रतिनिधि रचनाएँ

अब तक १० खण्डों में प्रकाशित रचनाएँ—

खण्ड एक—विक्रमादित्य साहसांक, मेघवाहन तथा सागर तरंग
(ऐतिहासिक उपन्यास) मूल्य १५०.००

खण्ड दो—सहस्रबाहु, गगन के पार तथा अन्तरिक्ष में
(वैज्ञानिक उपन्यास) मूल्य १५०.००

खण्ड तीन—कला, कामना तथा अनदेखे बंधन
(सामाजिक उपन्यास) मूल्य १५०.००

खण्ड चार—एक और अनेक तथा मानव
(सामाजिक उपन्यास) मूल्य १८०.००

खण्ड पाँच—परित्राणाय साधूनाम्
(महाभारतकालीन तीन उपन्यास) मूल्य २४०.००

खण्ड छः—स्वाधीनता के पथ पर तथा पथिक
(राजनैतिक उपन्यास) मूल्य २००.००

खण्ड सात—स्वराज्यदान तथा दासता के नए रूप
(राजनैतिक उपन्यास) मूल्य २४०.००

खण्ड आठ—विश्वासघात तथा देश की हत्या
(राजनैतिक उपन्यास) मूल्य २४०.००

खण्ड नौ—प्रभातवेला, कुमारसम्भव तथा उमड़ती घटाएँ
(पौराणिक पृष्ठभूमि पर) मूल्य २८०.००

खण्ड दस—गंगा की धारा (सम्पूर्ण)
(अकबरकालीन ऐतिहासिक उपन्यास) मूल्य २८०.००

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

081
167988

सुप्रसिद्ध विद्वान् एवं विचारक
श्री गुरुदत्त की अनुपम रचना

श्रीमद्भगवद्गीता

सुरल सुबोध भाषा भाष्य

मूल्य : नब्बे रुपये मात्र

जिस जाति को धरोहर में गीता का ज्ञान मिला हो, उस जाति के घटक आज मरने से भयभीत हों तो यह आश्चर्य की बात है। इसका मुख्य कारण यह है कि हम गीता को ऐसा ज्ञान मानते हैं जिसकी आवश्यकता वृद्धावस्था में मृत्यु के किनारे बैठे हुए पड़ती है।

वास्तव में गीता-ज्ञान मनुष्य को कर्म-क्षेत्र में उतरने के समय मिलना चाहिए। गीता मुख्यतया कर्मयोग का ज्ञान है।

भगवद्गीता के ज्ञान की शुद्ध विवेचना में लिखा यह भाष्य अनुपम है।

167988
Gurukula Kangri (Deemed to be University) Haridwar

हिन्दी साहित्य सदन

३०-पी, कनाट सरकस, (मद्रास होटल के नीचे)
नई दिल्ली-११०००१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तकालय

गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

वर्ग संख्या R 089.9143 GUR-V आगत संख्या 167988

पुस्तक विवरण की तिथि नीचे अंकित है। इस तिथि सहित 30 वें दिन यह पुस्तक पुस्तकालय में वापस आ जानी चाहिए। अन्यथा 50 पैसे प्रतिदिन के हिसाब से विलम्ब दण्ड लगेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

GURUKUL KANGRI LIBRARY	Signature	Date
Access No.		
Class No.		
Cat No.		
Tag etc.		
E.A.R.		
Recomm. by		
Data Ent. by		
Checked		

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री गुरुदत्त

1894-1989   शिक्षा : एम. एस-सी.

प्रथम उपन्यास "स्वाधीनता के पथ पर" से ही ख्याति की सीढ़ियों पर जो चढ़ने लगे कि फिर रुके नहीं।

विज्ञान की पृष्ठभूमि पर वेद, उपनिषद् दर्शन इत्यादि शास्त्रों का अध्ययन आरम्भ किया तो उनको ज्ञान का अथाह सागर देख उसी में रम गये।

वेद, उपनिषद् तथा दर्शन शास्त्रों की विवेचना एवं अध्ययन अत्यन्त सरल भाषा में प्रस्तुत करना गुरुदत्त की ही विशेषता है।

उपन्यासों में भी शास्त्रों का निचोड़ तो मिलता ही है, रोचकता के विषय में इतना कहना ही पर्याप्त है कि उनका कोई भी उपन्यास पढ़ना आरम्भ करने पर समाप्त किये बिना छोड़ा नही जा सकता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar